अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४५ अंक : ५ | वैसाखज्येष्ठ वि.सं. २०७६ | **मई,** २०१९ | पृष्ठ ३२ | एक प्रति अठारह रुपए | RNI 43602/77

कैसे कहें हम अलविदा...

डॉ. आनन्द लक्ष्मी

अंतराल बालकों का मेला था। मन से मिलने का मेला। फिर कभी एक-दूसरे को न भूलने का मेला। यह मेला बालकों को घर से दो दिन के लिये दूर रहकर मनचाही चीजें सीखने और पूरी स्वतन्त्रता से जीने का मजा लेने का अवसर था। मेले की थाली में परोसा कुछ नहीं गया था मगर टेबल पर बहुत कुछ सजा दिया गया था। बच्चे जो चाहें वो सीख सकते थे और सीखने के आनन्द का अनुभव कर सकते थे। अपने को जानने और समझने का आनन्द भी इस मेले में मौजूद था। मेले में आये सभी बालक पूरी तरह से आनन्दित होकर गये और सब का आग्रह है कि यह मेला फिर आयोजित किया जाय। ❑

॥ कबीर ॥

हद हद जाये हर कोई, अनहद जाये न कोय।
हद अनहद के बीच में, रहा कबीरा सोय॥

समानो मन्त्र: समिति: समानी
समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व:
समानेन वो हविषा जुहोमि।।

समानी व आकूति:
समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो
यथा व: सुसहासति।। – ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा–चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४५ अंक : ५

मई, २०१९

वैसाख–ज्येष्ठ वि.सं.–२०७६

❑

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक

रमेश थानवी

❑

कार्यकारी संपादक

प्रेम गुप्ता

❑

प्रबंध संपादक

दिलीप शर्मा

❑

- एक प्रति अठारह रुपये
- वार्षिक व्यक्तिगत एवं संस्थागत सहयोग राशि दो सौ रुपये
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि दो हजार रुपये

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

७–ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र

जयपुर–३०२ ००४

फोन- २७००५५९, २७०६७०९, २७०७६७७

ई मेल – raeajaipur@gmail.com

क्रम

वाणी	:	कबीर	३
बातचीत	:	बच्चों के साथ एक सफर की नई शुरुआत...	५
आलेख	:	आप अभिभावक हैं, मालिक नहीं	७
लेख	:	शिक्षा की भारतीयता	१०
लेख	:	बालकों को प्रेम दें	१५
अंतराल	:	अंतराल का आनन्द	१६
कविता	:	बचपन, बच्चों के नजरिये से...	१८

१६

रपट	:	अंतराल हमारी शाला और घर के बीच का आकाश	२१
परिक्रमा–१	:	पढ़ना इबादत है	२६
परिक्रमा–२	:	बालिका स्नेही पंचायत	२८
धरोहर	:	क्या लिखूं जी?	३०
चित्र समाचार	:	डॉ. आनन्द लक्ष्मी जीन्दगी का जश्न	३१

बच्चों के साथ एक सफर की नई शुरुआत...

मित्रो,

आज स्कूलों को चिंता है परीक्षा के नतीजों की। अभिभावकों की चिन्ता है हमारा बालक सबसे आगे हो। लेकिन चिंता की बात यह है कि न तो अभिभावक को चिन्ता है कि हमारा बालक खुद क्या करना चाहता है? उसे क्या कुछ करने में आनंद आता है? उसके जीवन में विनोद कहां है? ऐसा विनोद जो हृदय को उन्मुक्त कर दे। जो सरस हो। जो न केवल खुशी देता हो बल्कि रोम-रोम पुलकित कर देता हो। असल बात यह है कि हर मां-बाप अपने बालक को कुछ न कुछ बनाने में लगे हैं। जैसे कि बच्चे उनकी सम्पत्ति हो। इतना ही नहीं है बल्कि उनकी उम्मीद पर खरा न उतरने पर जाने-अनजाने कैसा व्यवहार करने लगते हैं स्वयं उन्हें नहीं पता। किसे फुर्सत है उन्हें पढ़ाने की। इतनी आजादी देने की ताकि वे भी रच सकें अपना आसमां।

हम यह भी भूल गये हैं कि हर बालक अनूठा है। अनोखा है। बहुत कुछ खास है उसमें दूसरे बालकों से। वे जन्म ही लेते हैं अपनी कुछ प्रतिभाओं के साथ। रचना चाहते हैं कुछ नया। वे करना चाहते हैं बहुत सी बातें अपने मन की। वे पूछना चाहते हैं बहुत से ऐसे सवाल जिनके उत्तर नहीं हैं उनके पास। अपनी दुनियां में वे साथ चाहते हैं हमारा। लेकिन देखने की बात यह है कि हम कितने हैं उनके साथ और उनके पास।

यह सवाल सामने खड़ा है कि कौन लौटायेगा उनको उनका बचपन फिर से? विचार करने की बात यह है कि हमसे कितने दूर होते जा रहे हैं हमारे ही बालक? यहां तक कि सबसे आगे बढ़ने की ललक ने तो सीखने-सिखाने के सारे खिड़की दरवाजे तक भी बंद कर दिये हैं। क्योंकि हम अभिभावक तो हर बात का सर्टीफिकेट चाहते हैं उनसे। यहां तक कि प्रकृति से तो कितना कुदरती रिश्ता है बालकों का। यह एक ऐसा रिश्ता है जिसकी गोद में वे खेलना चाहते हैं। मस्ती करना चाहते हैं। इन सबसे भी ज्यादा वे अपने प्रति सम्मान चाहते हैं। वे हर दिन को उत्सव बनाना चाहते हैं।

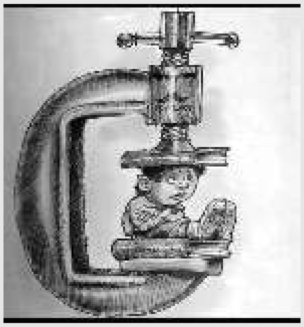

यहां मेरी चिन्ता ऐसे वातावरण की भी है चाहे वह उन्हें घर में मिल रहा हो या स्कूल में। जहां वे घुटन महसूस कर रहे हैं। अनुभव से कह रही हूं कि बचपन में मिले माहौल को बालक पूरी उम्र नहीं भुला पाता। रूसी बाल मनोवैज्ञानिक **वसीली**

सुखोम्लिंस्की ने अपनी किताब **बाल हृदय की गहराइयां** में लिखा है, **बचपन ऐसा भूत है, जो ता उम्र इंसान का पीछा करता है। हम वही बनते हैं, जैसा बचपन हमने पाया।**

देखने में भी यह आया है कि जो बालक खुशहाल माहौल में नहीं पले बड़े हैं वे आगे चलकर अवसाद के शिकार हो जाते हैं। शिक्षा का काम उन्हें निखारना है। उन्हें सुन्दरता दिखाना है। उन्हें तोड़ना या बिखेरना नहीं है। आज शिक्षा जहां उनकी सीखने की पाठशाला होनी चाहिए थी न जाने कैसे उन्हें जड़ता की ओर धकेलने वाली बन गयी है? इस विषय पर विचार किया जाना चाहिए।

यहां आज हमारी पहली प्राथमिकता बच्चों को भय से बचाने की है। उनके मन में बैठे भय को दूर करने की है। उन्हें निडर और प्रेम से जीने का माहौल बनाने की है। आज फिर से बड़ी जरूरत यह है कि हरेक बच्चे को अपनापन दिया जाए। उन्हें जाना व समझा जाए। उनके साथ निरन्तर संवाद किये जाएं। इतना ही नहीं हमें स्वयं अपने-अपने स्तर पर हर बालक की मासूमियत और हर प्राणी मात्र से प्रेम करने की स्वाभाविक प्रवृति को बचाकर रखना है। हमें ऐसे ही छोटे-छोटे प्रयास अपने स्तर पर करने हैं जिससे उनको अपना आसमां बनाने में मदद हो सके।

पिछले दिनों शिक्षा क्षेत्र में एक ऐसा ही कुछ अनूठा प्रयास **राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति** ने **नाना नानी न्यास** और **रमता दृग** के साथ मिलकर किया। इस दो दिवसीय आवासीय बाल शिविर **अंतराल** में बच्चों ने किताबी दुनिया और गणित की जटिल उलझनों से दूर खुले आसमां के नीचे अपने सपनों और उमंगों की उड़ान भरी। अपने सपनों को पूरा करने का विश्वास जीता बच्चों ने। और उन्हें 'जी कर' उनका मन उमंग व आशा से भर गया। यहां न केवल बच्चों के बाल मन ने चांद तारों से बातें की बल्कि कहानियों के माध्यम से उन्होंने कथा कहानी का मर्म भी जाना। इस शिविर की एक बड़ी खासियत यह भी रही कि विश्व प्रसिद्ध कलाकार **हिम्मत शाह** ने बच्चों से साक्षात्कार किया। वे बच्चे को सृजनकर्त्ता एवं रचनाकार मानते हैं। उनका मानना है कि बच्चों को सिखाने की बजाय आज जरूरत है उनके हुनर को निखारने की। उनके जीवन में रस भरने की। आनंद भरने की। इस अंक में आगे के पृष्ठों में बालकों की कुछ झलकियों का आनन्द ले सकेंगे और विस्तृत रिपोर्ट पढ़ सकेंगे।

मेरे विचार से तो हमें बालकों के जीवन में आनंद व रस भरने के लिए उनकी परवरिश इस तरह से करनी होगी कि हम उनसे कक्षा में अव्वल आने के बजाय ऐसे प्रश्न करें कि रोजमर्रा की जिन्दगी में हमने किनकी मदद की? क्या नया पढ़ा? क्या नया जाना? हमें उनका नियंत्रक होने की बजाय उनका मददगार होना ही होगा तभी वे जीवन में मधुरता से जी पायेंगे। बालकों के प्रति हमें अपने नजरिये को बदलना जरूरी है। ❑ **-प्रेम गुप्ता**

आप अभिभावक हैं, मालिक नहीं

❑

आनन्द लक्ष्मी

स्वर्गीय आनन्द लक्ष्मी का यह लेख फरवरी १९९९ में अंग्रेजी के दैनिक अखबार द हिन्दू की साप्ताहिक मैगजीन फोलियो में प्रकाशित हुआ था। आनन्द लक्ष्मी जी अत्यंत वत्सल दृष्टि से बालकों की ओर देखती थीं। उनका वात्सल्य अपार था। उसी वात्सल्य में उनको बाल शिक्षा का पूरा दर्शन सामने खड़ा दीखता था। एक सनातन दृष्टि थी उनकी। वे बालकों की स्वतंत्रता और सहज विकास के प्रति सदा चिन्तित रहती थीं। यह वजह है कि २० वर्ष पुराना लेख भी आज उतना ही प्रांसगिक लगता है। ❑ सं.

सहस्त्राब्दी खत्म होने को है। इसीलिए आसानी से देख सकते हैं। एक सदी जा रही है। दूसरी आ रही है। हमारे पास आगामी सदी का अस्थाई एजेंडा भी है। अपने देश के बच्चों की क्या स्थिति है? उनके बारे में हम क्या जानते हैं, जिससे उनके निकट भविष्य की योजनाएं बनाने में मदद मिल सकती है? या दूर भविष्य?

मेरा अनुमान है, लाक्षणिक रूप से कहूं तो, अभिभावक २०/२० की नजर खो रहे हैं। उन्हें १९९९ की बजाय २०२० की चिंता है। भविष्य में देखने की आदत ने हम में से ज्यादातर को नजदीक की कमजोर दृष्टि वाला बना दिया है। हम बहुत दूर का देख सकते हैं। पर साफ छपी छोटी-सी बात को नहीं पढ़ सकते। यह छपाई अंतरराष्ट्रीय समझौते, दवाओं के लेबल्स, सिगरेट के डिब्बे सहित किसी पर भी हो सकती है। इसलिए हम प्रतिबंधी शर्तों और चेतावनी पर ध्यान नहीं देते। अभिभावक कहां गलती कर रहे हैं? हमारे लिए यही चिंता का विषय है।

मैं सोचती हूं कि बच्चों को लेकर उनकी अदूरदर्शिता घातक स्तर तक पहुंच गई है। शिक्षित अभिभावक बच्चों के भविष्य को लेकर इतने चिंतित हैं कि उनका वर्तमान पूरी तरह से भूल गए हैं। वर्तमान, लक्ष्य का साधन है और लक्ष्य है भविष्य। भविष्य में खुशी के कोई चिह्न नहीं हैं। अथवा करुणा को लक्ष्य के तौर पर पाना है, या फिर कौन से गुण विकसित करने हैं। अभिभावकों ने आखिर बच्चों के भविष्य की क्या परिकल्पना की है?

बच्चों का जीवन सुखी हो? उन्हें सफलता मिले? उनके पास पैसा हो, ये लक्ष्य अपने आप में ठीक हैं। पर उन्हें जरूरत से ज्यादा महत्व देना उचित नहीं। सुख की जो परिभाषा आज है, उसकी तीन दशक पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी- ढेर सारी टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं हों, तैयार खाना मिल जाए, सूचना तकनीक की सुविधाएं हों, और विकसित देश की नागरिकता हो। सफलता का मतलब है, इससे शुरूआत करें तो, अकादमिक रेंक, सितारे, मेडल और पैसा! पैसा कितना हो, इसका कोई अंत नहीं है। जितना हो उतना अच्छा। कुछ ऐसा ही शायद अभिभावक सोचते होंगे। इन लक्ष्यों की ओर बच्चों को धकेलने

का मतलब है, उनके बचपन को जकड़ना। वे कुछ और नहीं कर सकें। इस प्रक्रिया में शिक्षा पद्धति भी उतनी ही जिम्मेदार है। स्कूल अच्छे परिणाम चाहते हैं। वे जानते हैं कि महत्वाकांक्षी अभिभावक अपने बच्चों को अच्छे परिणाम लाने के लिए प्रेरित करेंगे। उन पर दबाव डालेंगे। बच्चों को बराबर कहा जाता है, कि यह सब उनके हित में है- बच्चों को लेकर अभिभावकों ने जो लक्ष्य बनाए हैं, उन पर फिर से विचार करने को कहा जाए, तो ऐसा लगेगा मानो अधिकृत देश में आजादी के नारे लगाए जा रहे हैं।

वंचित बच्चों के लिए स्थिति बेशक भिन्न है। गरीबी रेखा के नीचे और गरीबी रेखा से ऊपर के बच्चे कई चीजों से वंचित हैं। उन्हें स्कूल जाने को नहीं मिलता। वे अपना घर चलाने के लिए परिवार की मदद करते हैं। या फिर किसी और के लिए मजदूरी करने को विवश हैं। सामाजिक-आर्थिक स्तर पर और आगे बढ़ें, तो उनकी सुविधाएं बढ़ती दिखाई देती हैं। बच्चों के स्कूल की सुविधा हैं, पर ज्यादातर स्कूल संतोषजनक नहीं हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर, बच्चों की शिक्षा और जीवन सुधारने के अन्य अवसर बहुत ही गड़बड़ हैं। इस निष्कर्ष पर आना मुमकिन नहीं है कि ऊपर से लेकर नीचे तक के आर्थिक स्तर पर बचपन उपेक्षित है। हम साफ कह सकते हैं कि जो सदी अभी खत्म हुई है, उसमें बच्चों के जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आई है। लिंग अनुपात का ही उदाहरण लें। स्पष्टत: गिरावट आई है। प्रगतिशील होने की विकास की अवधारणा को छोड़ना पड़ेगा। समय के साथ-साथ कुछ चीजें बेहतर हुई हैं, तो कुछ बदतर। महिलाओं के अस्तित्व पर भी कुछ शंकाएं उठी हैं। खासकर वहां जहां गरीबी और हाशिए पर पड़े लोगों की समस्याओं से स्थिति गंभीर बनी हुई है।

पर हां, दिव्यांग बच्चों के लिए जरूर काम हुआ है। मैं उन अभिभावकों से सहमत हूं, जो दिव्यांग के रोमांटिक नजरिए के विरुद्ध चेतावनी देते हैं। उनके लिए जो भी किया गया है, उसे बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया है। फिर भी, धीमी गति से ही सही, दिव्यांगों के लिए काम हुआ है। यह प्रशंसनीय है। उनके लिए नृत्य सिखाने के स्कूल हैं, संगीत की कक्षाएं हैं, थिएटर ग्रुप्स हैं, साथ ही नियमित स्कूलें हैं, जिनमें बच्चे भाग ले सकते हैं। बेशक अभी बहुत कुछ करना बाकी है, पर जितना भी हुआ है, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता।

बच्चों के एक और क्षेत्र में निश्चित रूप से सुधार हुआ है। उन्हें गोद लेने के संदर्भ में। मुझे तीन दशक पहले के बच्चियों की लम्बी सूची के आंकड़े याद हैं। वे गोद जाने को लालायित थीं। उन अभिभावकों की भी लंबी लाइन थी जो लड़का गोद लेना चाहते थे। पिछले दशक में कई शिक्षित युवा भारतीय दंपतियों ने बच्चे गोद लिए। पर गोद लेने की प्रक्रिया में काफी वक्त लग जाता है। इस संबंध में तुरंत और समय पर कार्यवाही की आवश्यकता है ताकि गोद लेते समय शिशु काफी छोटा हो और वह अभिभावक के साथ घुलमिल सके।

शिक्षा पाना हर बच्चे का अधिकार है। और मुहैया कराना हर देश का कर्त्तव्य। पर **बचपन में केवल शिक्षा ही जरूरी नहीं है।** हम बचपन को सिर्फ स्कूल से जोड़ते हैं। यह सही भी है। हम उनके इस अधिकार के लिए लड़तें भी हैं। पर बच्चों के लिए केवल स्कूल जाना ही पर्याप्त नहीं है। यह महज एक हिस्सा है। कला, संगीत, नृत्य, नाटक भी जरूरी हैं। ये उन्हें व्यस्त रखते हैं। मनोरंजक गतिविधियां हैं। ये बच्चों को टीवी के बेवकूफी भरे कार्यक्रमों से दूर रखते हैं। टीवी कार्यक्रमों का उन पर विपरीत असर पड़ता है। वे उन्हें अश्लील और हिंसक बनाते हैं। छोटे परदे पर कुछ अच्छे कार्यक्रम भी हैं। पर बच्चों को उनकी ओर विज्ञापनों के माध्यम से जोर-शोर से आकर्षित किया जाता है। ऐसे में क्रिकेट देखना भी तनावपूर्ण हो जाता है। हाइकिंग, ट्रेकिंग और शिविर की सुविधाएं भी केवल कुछ प्राइवेट और रेजिडेंशियल स्कूलों में हैं। इन सब चीजों से हमारे लगभग सभी बच्चे महरूम हैं। अगली सहस्त्राब्दी की योजना बनाने वालों, आप सुन रहे हैं ना?

आज सभी इंटरनेट के बारे में बात कर रहे हैं। सूचनाओं के इस अद्भुत माध्यम के बारे में बात कर रहें है, खासकर बच्चे। हमें लगता है, वे सूचनाओं से वंचित नहीं रहेंगे। उन्हें पुस्तकालय से लाई पुरानी किताबों में माथा नहीं देना पड़ेगा। अब ज्ञान के सभी क्षेत्रों की अच्छी जानकारी पाना आसान हो जाएगा। पर यहां भी समस्याएं हैं, कम नहीं काफी हैं। नेट सर्फ करते समय हमारे सामने कई

अनावश्यक जानकारियां भी आ जाती हैं। बच्चों को कौन बताएगा कि कुछ तथ्य स्तरहीन और बेकार हैं, तो कुछ तथ्य उपयोगी हैं। कौन-सी जानकारी काम की है और कौन -सी व्यर्थ, इनमें कौन अंतर बताएगा? इंटरनेट के पास न तो सहृदय पुस्तपाल है और ना ही बच्चों के भविष्य की चिंता करने वाले अभिभावक।

इंटरनेट सर्फ करते समय अच्छी खगोलीय सामग्री मिल सकती है, तो कबाड़ भी। हम पोरनोग्राफी (अश्लील तस्वीरों) की तो बात ही नहीं कर रहें। इसलिए सही परामर्श बेहद जरूरी है। महज एक मुश्त सलाह नहीं, बल्कि सभी तरह के मुददों पर संवाद के लिए परिवार का सानिध्य जरूरी है। यह उस समय भी नहीं, जब परिवार में बड़े और बच्चे आपस में मिलते हैं। हमारे अधिकांश अध्ययनों में सामने आया है कि परिवार के सदस्यों के बीच निकटता तो है, पर आत्मीयता नहीं। उनके बीच विश्वसनीय संवाद नहीं हैं। कई शहरी परिवारों मे आजकल यह समस्या भी है कि परिवार में किसी के लिए समय या दिलचस्पी नहीं है। ऐसे में आत्मीय मध्यस्थता और पेशेवर परामर्श की काफी गुंजाइश है।

अपने देश में महिला किसी भी स्तर पर महफूज नहीं है। न मां की कोख में, ना शैशवावस्था में। न स्कूल जाने से पहले, ना किशोरावस्था में कम उम्र में विवाह, बार-बार मां बनना, वृद्धावस्था- इन सब स्थितियों में जीना दूभर है। वजह है, खलनायक पुरुष हम मनु का हवाला देते हुए कहते हैं कि महिलाएं पिता, पति और पुत्र के अधीन रहें। उनके नियंत्रण में रहें। हैरानी की बात तो यह है कि सदियों से इस लीक पर चल रहे हैं। अथर्ववेद की एक सूक्त का भी हवाला दिया जाता है। उसमें प्रार्थना है कि पुत्र यहां जन्मे और पुत्री कहीं और। इन स्त्रोंतों की ऐतिहासिकता से यह धारणा बनती है कि यह सोच जब इतने लंबे समय से चल रही है, तो अब नहीं बदलेगी। इसके विपरीत मैं उपनिषद (श्वेताश्वतारा) से कुछ उध्दृत कर रही हूं। एक सेत आत्मा के लिए कह रहे हैं-'यह न तो पुरुष है और न ही स्त्री?' आत्मा का कोई लिंग नहीं होता, शरीर का होता है। अधिकांश भारतीय जिनसे मैं मिली हूं वे मानते हैं कि मौजूदा जन्म अनजाने अतीत और अनजाने भविष्य का महज अंश है, हम उन्हें पुराना बता देते हैं। वे क्रियाएं जिन्हें हम फिर से याद नहीं कर सकते हैं हमारे सभी जन्मों में जो स्थाई है, वह आत्मा है। हमारी जिन परंपरागत बातों को विश्वसनीयता की आवश्यता है, उन पर हमें विचार करना चाहिए।

मुझे याद है, कुछ सालों पहले राजस्थान में सती प्रथा ने मेरे विद्यार्थियों में रोष और अविश्वास पैदा कर दिया था। उसी समय दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ ने हड़ताल की थी। हमने उस समय का उपयोग थिएटर के लिए किया। हमारे विद्यार्थियों ने स्क्रिप्ट लिखी। थोड़ी मदद हमने भी की। गांव की एक मनीषी महिला ने जब सती का पक्ष लिया तो हमारे नाटक से दुख के दृश्य निकाल दिए गए उनका कहना था कि प्राचीन ग्रंथों के मुताबिक आत्मा न पुरुष है और ना ही स्त्री तो फिर हम गांव में दो लिंगों में अंतर क्यों कर रहे हैं? यहां थोड़ी राहत नजर आती है उन लोगों के लिए जो लिंग समानता के लिए काम कर रहे हैं और संभवत: सीख भी। हमें आज के महत्व के विचारों में उन स्रोतों से सुधार करना जरूरी है, जिनका लोग सम्मान करते हैं।

तो अगले दस-बीस साल में आने वाले युवा और युवतियों का क्या भविष्य है? हमारे पास कोई पारदर्शी यंत्र नहीं है। पर कुछ बिन मांगी सलाह जरूरी है। अभिभावक बच्चों के मालिक नहीं हैं। वयस्क उन्हें अपने विश्वास में लें जब तक कि वे आत्मनिर्भर ना हो जाएं। हमें मालिकाना हक छोड़कर उन्हें अपने विश्वास में लेना होगा। यह एक आदर्श परिवर्तन होगा। बच्चा अभिभावकों के अहम का विस्तार नहीं है, बल्कि ये वे हैं, जो उनके भरोसे छोड़ गए हैं। लाड़ प्यार से उनकी देखभाल, परवरिश, मार्गदर्शन, साझेदारी जरूरी है। यदि वे उन (अभिभावकों) जैसा नहीं बन रहे हैं, तो उत्तेजित ना हों, उन पर रोष ना करें। उपेक्षा भी नहीं, सिर्फ इसलिए कि बच्चे के नाक-कान चाचा जैसे हैं, जिन्हें आप ना पंसद करते हैं। बच्चे को पूरे दिल से अपनाएं, उनके रुझान, उनकी ताकत, उनकी कमजोरियां समझते हुए उन्हें विकल्प चुनने और फैसले लेने में मदद करें। उन्हें महज औसत दर्जे के भौतिक लक्ष्यों के पीछे न धकेलें। उनमें हुनर विकसित करें, सौहार्द, करुणा, परोपकार के गुण विकसित करें। यह बेशक चुनौती है, पर उनके हित में है। ❑

अनुवाद-चम्पा शर्मा

मो.-९९२८००८९३६

शिक्षा की भारतीयता

❑

भवानीप्रसाद मिश्र

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भवानीप्रसाद मिश्र अपने काव्य में भी दर्शन रचते थे। वे गयी सदी के बिरले ऋषि थे। शिक्षा की भारतीयता पर उनका यहां प्रस्तुत लेख 'क' नाम की पत्रिका में भाई विजयशंकर जी ने प्रकाशित किया था। यह लेख आज की स्थिति में ज्यादा प्रांसागिक और व्यवहारिक लगता है। पाठकों को यह एक लेख बहुत कुछ दे जायेगा ऐसा हमारा विश्वास है।

वर्तमान काल की बहुत-सी निरुत्साहित कर देने वाली बातों के बीच एक लक्षण ऐसा भी है जो हमें उत्साहित करता है। आज एशिया जागृत हो रहा है, यदि हम ठीक तरीके पर इस महान् घटना से लाभ उठा सकें तो न केवल एशिया ही बल्कि सारा संसार इससे लाभ उठा सकता है।

पूर्व और पश्चिम का सम्पर्क दो शताब्दियों से रोज-रोज विस्तृत और घनिष्ठ होता जा रहा है, किन्तु इस सम्पर्क ने कोई पूर्णता प्राप्त नहीं की, इसने हमें एक-दूसरे में विश्वास नहीं दिया, एक-दूसरे में अविश्वास और द्वन्द्व की प्रेरणा ही यह सम्पर्क अभी तक हमें दे पाया है। इसके फलस्वरूप पूर्वीय प्राणों में एक अस्वाभाविक खिंचाव (स्ट्रेन), एक आशिप व्याकुलता उत्पन्न हो गयी है।

इस संबंध ने कोई पूर्णता प्राप्त नहीं की। इसका कारण है कि यह लाभालाभ की प्रबल कामना और स्वार्थ को लेकर स्थापित हुआ। पश्चिमी जातियों ने राजनीति और पैसे के विचार से संबंधित देशों के निवासियों के स्वार्थ के विरुद्ध एक अवांछनीय साहस की सृष्टि की और इसके कारण एक व्यावहारिक बेगानापन उत्पन्न हुआ जो दोनों दलों के लिए हानिप्रद है।

केवल पैसे के लाभ को लेकर ही यह सब कहने की मैं आवश्यकता नहीं समझता। इस अनोखे सम्पर्क ने मनुष्य के नीच भावों को इस प्रकार की प्रबलता दे रखी है कि इसके कारण एक ओर अभिमान, स्वार्थ और पाखंड और दूसरी ओर भय, संदेह और चाटुकारी को प्रश्रय मिला है और ऐसा जान पड़ता है कि आध्यात्मिक दिवाले की घड़ियां समीप आ गयी हैं।

हमें अपने समस्त प्रयत्नों को समेटकर आज की अवस्था समझ लेने की आवश्यकता है और समझकर वर्षों के अभ्यास के विरुद्ध शारीरिक बल और अभिमान के बजाय आध्यात्मिक मार्ग-प्रदर्शन में दृढ़ता-विश्वास उत्पन्न कर लेना है।

मनुष्य के इतिहास के आरम्भ में उसका पहला सामाजिक उद्देश्य एक जाति, एक कौम निर्धारित करना था। उस प्राचीन काल में व्यक्ति भौगोलिक सीमा-रेखाओं के द्वारा घेरकर, अपना किया गया था। किन्तु आज के युग में आवागमन की सुविधाओं ने इन सीमा-रेखाओं को मिटा दिया है। और अब मनुष्य का महान् संघ या तो अपनी सत्य संभावनाओं को पा लेने की या एकदम ही प्रलय कर देने की बाट-सी जोह रहा है। अब हमारे सामने किसी एक जाति-प्रान्त या देश का प्रश्न नहीं है। अब हमारे सामने हिन्दू या मुसलमान, मध्य प्रान्त या ब्रह्मदेश, हिन्दुस्तान या ग्रेट ब्रिटेन का प्रश्न नहीं है। अब तो हमारी जाति-मनुष्य और देश संसार है। व्यक्ति का स्थान अब जातियों ने ले लिया है। इन जातियों को स्वतंत्र होकर अपना व्यक्तित्व प्रकट करना है। और साथ ही संघ की प्रेरणा से बंध जाना है। मनुष्य मात्र की किसी भी काल से अधिक आज एक एकता समझनी है जिसकी सीमा सदा से अधिक विस्तृत, भावुकता सदा से अधिक कोमल और शक्ति सदा से अधिक दृढ़ होनी है। आज जबकि समस्या बड़ी है तो उसका हल भी एक बड़े पैमाने पर ढूंढना है। मनुष्य

में देवत्व को एक बड़ी भक्ति के साथ स्थापित करना है। हमारे विश्व-विस्तृत विश्वास के मंदिर की किसी निश्चित गहराई पर नींव डालनी है।

इस प्रकार की संभावना को सत्य करने की पहली सीढ़ी विभिन्न जातियों को एक-दूसरे के सामने स्पष्ट करना है, और यह स्पष्टीकरण ऐसी जगहों में नहीं हो सकता जहां लाभालाभ की दृष्टि सर्वशक्तिमान ईश्वर की भांति प्रबल हो उठी हो। हमें इस स्पष्टीकरण के लिए एक ऐसी जगह चुननी है, एक ऐसा वातावरण बनाना है जहां पैसा तुच्छ और स्वार्थ हेय हो। भारतवर्ष एक ऐसा ही स्थान है। इस पवित्र देश के महर्षियों ने उपनिषदों में गाया है-

ईश्वस्याम् इदम् सर्वम् यत्किंचित जगत्याम जगत्।
तेन त्यक्तेन मां गृध: कस्य स्विद्धनम्।।

जान लें कि इस अस्थिर संसार में सारे गतिवान ईश्वर से आवतरित हैं। इन्हें छोड़कर आनन्द का संग्रह कर, संग्रह के लोभ से आनन्द लेने का प्रयत्न मत कर। इसका अर्थ है कि जब हम वस्तु बाहुल्य को ही एकमात्र अंतिम सत्य समझ लेते हैं तब हम उनकी पार्थिव प्राप्ति में ही अपने को लगा देते हैं। किन्तु यदि हम अनन्त आत्मा को अंतिम सत्य मानें तब उसके साथ एकीकरण में हमें आत्मानन्द मिलता है। इसी कारण जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है। उनके विषय में 'सर्वमेव विशान्ति' कहा गया है।

संसार के साथ उनका संबंध एकीकरण का संबंध है। इसी संबंध की स्थापना करने में शिक्षा की भारतीयता रही है और आज भारत को इसीलिए अपने आपको स्पष्ट करने की आवश्यकता है। पूर्व अपने और दूसरे सभी के लाभ की दृष्टि से अपने को प्रकट करे क्योंकि इतिहास में विपत्ति का सबसे बड़ा उद्गम एक-दूसरे के विषय में गलतफहमी ही है। यदि हम किसी को गलत समझें तो उसके साथ न्याय नहीं हो सकता।

जब हम वस्तु बाहुल्य को ही एकमात्र अंतिम सत्य समझ लेते हैं तब हम उनकी पार्थिव प्राप्ति में ही अपने को लगा देते हैं। किन्तु यदि हम अनन्त आत्मा को अंतिम सत्य मानें तब उसके साथ एकीकरण में हमें आत्मानन्द मिलता है। इसी कारण जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है। उनके विषय में 'सर्वमेव विशान्ति' कहा गया है।

प्राचीन काल में इस देश ने इस महान् संस्कृति को जन्म दिया था। इस काल में वह उस महानता का जीर्णोद्धार करके फिर से एक बार उतनी ही महानता को जन्म देना चाहता है। एक समय था जब हमारे पास अपना मस्तिष्क था-वह जीवित था, वह सोचता था, अनुभव करता था। वह प्रकट करता था, वह ग्रहण करता था, वह निर्माण करता था। ये कि हमारा यह मस्तिष्क आज की शिक्षा-पद्धति की गति या उद्देश्य में कहीं काम का समझा जाता तो अच्छा होता।

हमें इमारतें, किताबें और ऐसे ही अनेक लुभावने वजन इस मस्तिष्क को दबा रखने के लिए दिये गये हैं। यह पुस्तकालयों की मजबूत काठकी आलमारी की तरह चमड़े की जिल्द वाली मोटी-मोटी किताबों को सुरक्षित रखने भर का साधन बनाया गया है। इस प्रकार इसने अपना रूप-रंग खोकर बढ़ई की दुकान से वार्निश उधार ले लिया। इस सबमें हमें द्रव्य-हानि हुई। सुकोमल भावों की क्षति हुई और इन अभावों के स्थान में सरकारी रिपोर्टों में 'एजुकेशन' कहे जाने वाले एक अनन्य निष्फल हमारे पल्ले में आया। सच पूछा जाए तो आंख होकर हमने चश्मा खरीदा। हमारी विद्या की देवी 'सरस्वती' है। वह कुन्देन्तु तुषार हार धावला, वह शुभ्र वस्त्रावृत्ता है, वह वीणा वरदण्ड मंडितकरा है। किन्तु इन सबसे बढ़कर वह श्वेत पद्मासना है, कमल उसका आसन है जिसका अर्थ है कि वह समस्त शतदलयुक्त जीवन और अस्तित्व के केन्द्र में स्थित है और वह जीवन स्वर्ग के प्रकाश के साथ अपने को सौन्दर्य में विकसित करता है।

पाश्चात्य शिक्षा, जिससे हमारा सम्बन्ध हुआ है, प्राणमय नहीं है। इसका भी रंग कदाचित श्वेत है किन्तु यह सफ़ेद चूने की पुती हुई क्लासों की सफ़ेदी है। इसकी स्थिति निष्प्राण पाठों में है जो स्कूल मास्टर के निपट निस्तेज सम्पर्क से निष्प्राणतर हो उठते हैं। महाकवि रवीन्द्र ने इस शिक्षा का

असर अपने संस्मरणों में बडे. ही विस्तृत रूप में व्यक्त किया है। उसे पढ़कर जान पड़ता है कि जैसे वृक्ष को मत बढ़ने की ताकीद्र देकर उसके पैकिंग केस बना डाले गये हों।

इस कुशिक्षा का उद्‌गम पूर्व और पश्चिम के गठबन्धन की पवित्र भावना को लेकर नहीं हुआ था। यही एकमात्र सन्तोष है। यह शिक्षा तो स्वामी और दास के कृत्रिम सम्बन्ध को निभाने की नियत से प्रारम्भ की गयी थी। आदर्श की यह कमी आज तक भी हमारी शिक्षा प्रणाली को पूर्ववत ही जकड़े हुए है। विश्वविद्यालयों में यद्यपि अब अनेक विषय पाठ्यक्रम में रख दिये गये हैं जिस प्रकार गेहूं के बोरे, गाड़ी में जोते गये बैल का वजन ही होते हैं उसी प्रकार इनके कारण विद्यार्थियों की असुविधा ही बढ़ी है।

जब मस्तिष्क अपने स्वाभाविक खाद्य से चिरकाल तक वंचित रहता है, जब सत्य और गति की अबाधता उसे नहीं मिलती, हमारे विद्यार्थियों मे भी इम्तिहान में पास होने का एक पागलपन आ समाया है। आज कम से कम ज्ञान अर्जन करने पर भी परीक्षा में अधिक से अधिक नम्बर पा लेना ही 'सफलता' हो गया है। यह सत्य के प्रति हठात् उत्पन्न की गयी एक अश्रद्धा है, एक दिमागी बेईमानी है, जिसके द्वारा मस्तिष्क स्वयं अपने को लूटने पर उत्साहित किया जाता है। किन्तु इसलिए कि इस धोखे में अपने को डालकर हम अपने मस्तिष्क के अस्तित्व को भूल जाते हैं, 'सफलता' का नाम सुनकर फूल उठते हैं । क्लर्क, वकील और पुलिस इन्सपेक्टर के तमगे कस लेते हैं-जवानी में हमारी मौत हो जाती है। हम आत्म हत्यारे हैं।

मनुष्य की बुद्धि को अपने गौरव में एक प्रकार का स्वाभाविक अभिमान होता है। यह अभिमान संस्कृति का अभिमान है। संस्कृति आन्तरिक पूर्णता का नाम है। बाह्य प्राप्तियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जब आन्तरिक पूर्णता का यह भाव किसी बाह्य प्राप्ति की आवश्यकता के आगे झुक जाता है, तब बुद्धिमान मनुष्य के अभिमानी हृदय को एक ठेस पहुंचती है। वर्तमान भारत अपनी शिक्षा के द्वारा ही इस प्रकार अपमानित किया गया है। एक दिन वह अपनी सन्तान को युगों की सोची-विचारी संस्कृति से पुष्ट करता था, वह संस्कृति आज पुराने वस्त्र की भांति उसके ऊपर से उतार कर फेंक दी गयी है-वे आज इम्तिहान के पास करने के गोरखधन्धे में डाल दिये गये हैं। ज्ञानोपार्जन के लिए नहीं, केवल इस बात का ढिंढोरा पीटने के लिए कि हम अंग्रेजी संस्थाओं की देखरेख में तैयार किये गये उम्मीदवार हैं। हमारा पढ़ा लिखा समाज, आज संस्कृत समाज नहीं हैं। वह तो उम्मीदवारों का समाज है, इसी बीच में उम्मीदवारों को मिलने वाली जगह कम हो रही हैं। असन्तोष फैल रहा है। जो अधिकारी इसके लिए जिम्मेदार रहे हैं वे ही आज इसके शिकारों का दोष देते हैं। मनुष्य स्वभाव की ऐसी विपरीति ही है, जिन्हें उसने अकारण ही सबसे अधिक कष्ट दिया है, उन्हें वह अपना शत्रु कहता है।

यह वैसा ही है जैसा कि सुन्दर पक्षियों को मारकर उनके परों से अपनी टोपी सजाने वाली जाति किसी दिन इन अभागों के समाप्त हो जाने पर उन्हें मर जाने का दोष दे।

कभी-कभी प्रान्त के गवर्नरों आदि के दीक्षान्त भाषणों में हमने सीखने का कृत्रिम प्रेम उत्पन्न करने के उपदेश पढ़े हैं-किन्तु वह कारखाने तो बन्द ही नहीं होते जिनकी उत्पत्ति सीखना नहीं सर्टीफिकेटस् हैं, श्रृंखलाबद्ध पंछी को उड़ सकने की याद दिलाना ठीक है। किन्तु उस श्रृंखला को तोड़ देना कहीं अधिक अच्छा है, जिसने उसे लकड़ी पर बांध रखा है। सबसे बड़ा दुख तो यह है कि पक्षी ने उस जंजीर को भूषण मान लिया है और वह उसकी अंग्रेजी ख़न-खन पर प्रसन्न है। जहां समाज अपेक्षाकृत सरल और बाधाएं अगणित नहीं हैं वहां हम स्पष्ट देखते हैं कि जीवन-प्रवाह किस प्रकार शिक्षा

मनुष्य की बुद्धि को अपने गौरव में एक प्रकार का स्वाभाविक अभिमान होता है। यह अभिमान संस्कृति का अभिमान है। संस्कृति आन्तरिक पूर्णता का नाम है। बाह्य प्राप्तियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जब आन्तरिक पूर्णता का यह भाव किसी बाह्य प्राप्ति की आवश्यकता के आगे झुक जाता है, तब बुद्धिमान मनुष्य के अभिमानी हृदय को एक ठेस पहुंचती है।

को उसके प्राणमय पथ पर चलाता है। भारत की आदिम जन शिक्षा पद्धति धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। यही कभी लोगों के जीवन से एकरस थी। वह बड़े स्वाभाविक ढंग से जीवनधाराओं में से होकर बहती थी और कहीं भी अपना निकास बना लेती थी, वह जैसे संस्कृति की सिंचाई का एक विस्तृत ढंग था, आज भी उसके शिक्षकों की जनता जैसे पीयूषवर्षण चन्द्र की भांति बाट जोहती है और उन्हें पा लेने पर सैकड़ों की तादाद में इकट्ठा होकर उन्हें सुनती है, वे वहां देश के श्रेष्ठ विचारों और आदर्शों की श्रेष्ठ रूप में व्याख्या करते हैं, शिक्षा के इस ढंग में महाकाव्यों की कथा, प्राचीन ऐतिहासिक और पुराणों के पाठ, नाटक और आख्यान आदि होते हैं।

इस पद्धति से स्पष्ट है कि आदर्श के लिए गम्भीर दर्शन, प्रकटीकरण के लिए कविता, चरित्र के लिए वीरता लेकर मनुष्य की तरह रहना एक बड़ी बात है। यही बताना शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है। संस्कृति की इसी ओजमयी पद्धति के कारण भारत के साधारण जन समुदाय अशिक्षित कहलाकर भी, सामाजिक बन्धनों की पवित्रता, निरन्तर बलिदान और त्याग तथा धर्म कहे जाने वाली विशाल शक्ति से पूर्ण परिचित रहे हैं।

यह पद्धति आज के उलझे हुए समाज के लिए सुनने में बड़ी सादी जान पड़ेगी। किन्तु सामाजिक जीवन के प्रारम्भिक सिद्धान्त सदा एक होते हैं। समाज चाहे उन्नत हो या अवनत, वैयक्तिक उलझनों को अवश्य ही सामूहिक शृंखला में शृंखलाबद्ध होना चाहिए। इस बात की अवहेलना नहीं की जा सकती। अवहेलना होने पर चारों ओर द्वन्द्व के अतिरिक्त कुछ बचा नहीं रहेगा। इस संसार में बहुत-सी वस्तुओं ने अपने अधिकार से अधिक जगह ले रखी है-उनका बहुत-सा भार अनावश्यक है। इस अनावश्यक भार को वहन करने से सभ्य संसार का बल भले ही सिद्ध होता हो, उसके बुद्धि के विषय में हम कोई अच्छी राय नहीं बना पाते। अपने आप स्वीकारी हुई दासता के सभी प्रकारों का मुख्य उद्गम लाभ की इच्छा है, सभ्य संसार इस तृष्णा से इतना अधिक रंग गया है कि अब इसके विरुद्ध लड़ना कठिन जान पड़ता है, मैंने यह बात इस थोड़े-से समय में अपनी शाला में भी देख ली है। प्रारंभिक कक्षाओं में लाभ का ऐसा लोभ नहीं देखा गया किन्तु जहां लड़के ज़रा बड़े हो गये हैं, वहां बड़ों को भाव उनकी दुनियादारी, बीच-बीच में आकर रुकावट देती है, तब वे ज्ञान उपार्जन करना नहीं चाहते । वे परीक्षा पास करना चाहते हैं। आज के विश्व में धन्धों की बहुरूपता किसी भी काल से अधिक है। वे अपने ज्ञान और अभ्यास में कुशलता के हेतु विशेष शिक्षण चाहते हैं। और इस प्रकार आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के बदले शिक्षा के बाह्य उपकरणों की ओर झुकना पड़ता है। मनुष्य के गम्भीरतर स्वभाव को इससे पीड़ा होती है। जीवन का यह रुंधा हुआ स्वरूप उन्नति के कामुक बन्धनों से अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करता है। इसी कारण आज हर जगह प्रचलित शिक्षा प्रणाली के प्रति एक असन्तोष फैला दीख पड़ता है।

भारत में भी असन्तोष के इसी अस्पष्ट रूप के कारण कई राष्ट्रीय शालाएं खोली गयी हैं। दुर्भाग्य से हमारी आज तक की शिक्षा ने हमारे सोचने-विचारने का साहस सभी हमसे छीन लिया है। हम निर्माण करना नहीं जानते, उधार लेते हैं, यूरोपीय संस्थाओं के सांचे में हम इनको ढाल लेते हैं। हम भूल जाते हैं कि चलने में कुशलता प्राप्ति करने के लिए हमें अपने ही पैरों से काम लेना चाहिए। विदेश में बने हुए लकड़ी के पैर आवाज तो अवश्य करेंगे और उन पर चलने से हमारे नाट्य का भी अच्छा प्रदर्शन होगा किन्तु ध्यान रहे कि वे पराये हैं, निर्जीव हैं। उधार लेते समय हम वस्तु के असली स्वरूप का ध्यान नहीं रखते, यदि मछलियों में कोई विज्ञानवेत्ता उत्पन्न हो जाए और वह पानी में बैठे-बैठे बन्दर का डाल पर कूदना देखे तो बहुत

सामाजिक जीवन के प्रारम्भिक सिद्धान्त सदा एक होते हैं। समाज चाहे उन्नत हो या अवनत, वैयक्तिक उलझनों को अवश्य ही सामूहिक शृंखला में शृंखलाबद्ध होना चाहिए। इस बात की अवहेलना नहीं की जा सकती। अवहेलना होने पर चारों ओर द्वन्द्व के अतिरिक्त कुछ बचा नहीं रहेगा। इस संसार में बहुत-सी वस्तुओं ने अपने अधिकार से अधिक जगह ले रखी है-उनका बहुत-सा भार अनावश्यक है।

सम्भव है कि बन्दर को तनिक भी श्रेय न देकर वह डाल को ही इसका कारण सिद्ध कर दे। विदेशी-'विद्यालयों में हम उसकी इमारतों की आरण्यक शाखाएं देखते हैं, फर्नीचर देखते हैं, रेग्यूलेशन देखते हैं, सिलेबस देखते हैं, किन्तु इस सबसे स्पष्ट उस बन्दर को नहीं देखते। हम यह नहीं देखते कि यूरोप की शिक्षा की आत्मा वहां के विद्यालयों में नहीं वहां के समाज, पार्लियामेंट, साहित्य और जीवन के अन्य सामूहिक प्रयत्नों में है। वहां के विद्यालय तो उन विशाल बांधों की तरह हैं जो निरन्तर वर्षा से अपने को शुद्ध बनाए हुए हैं। हमारे भारतवर्ष में बांध तो हमने कायम कर लिये हैं। किन्तु ज्ञान की वर्षा हमें नहीं मिली। फर्नीचर बना लिया है, शिक्षक नहीं मिलता । एक और बड़ी बात जिसकी हम अवज्ञा कर सकते हैं, ये है कि यदि शिक्षक स्वयं सीख नहीं रहा तो वह कुछ सिखा नहीं सकता। जो दीपक स्वयं जल नहीं रहा अन्य दीपकों को नहीं जला सकता। शिक्षक अपने विषय की सीमा पर पहुंच गया है, ज्ञान के साथ जिसका प्राणमय यात और आयात नहीं है जो कि केवल पाठों का उच्चारण करता है वह विद्यार्थी के मस्तिष्क को लादता है, स्फूर्ति नहीं देता। सत्य केवल सूचित ही नहीं किया जाना चाहिए, उसे प्रेरणात्मक बनाना चाहिए। यदि प्रेरणा नष्ट हो जाए और केवल सूचना एकत्रित होती जाए तो सत्य अपनी अनन्तता खो देता है। हमारी स्कूली शिक्षा का अधिकांश नष्ट हो गया है। क्योंकि हमारे अधिकांश शिक्षकों के विषय सभी जीवित विषयों के मृत मात्र है, उनका उनसे केवल किताबी सम्बन्ध है, स्नेह और जीवन का अखण्ड नाता नहीं ।

इसीलिए शिक्षण संस्था का मेरा आदर्श सत्य का अनुसरण है। जो सत्य का प्रदानकर्ता भी है। ऐसी संस्था, एक स्वच्छन्द वातावरण हो जहां शिक्षक और शिक्षित में कोई दुराव न हो। वे पृथ्वी और आकाश की भांति एक-दूसरे के समक्ष हों-वे अपना सारा जीवन एक ही महत्त्वाकांक्षा को लेकर संस्कृति के सारे आनन्दों का उपयोग करते हुए व्यतीत करें। हमारे प्राचीन तपोवन ऐसे ही स्थान थे, वहां आचार्य और ब्रह्मचारी एक साथ समिधा और कुश इकट्ठा करते हुए '**तत्वमसि**' का पाठ करते थे । इंगुदी से तेल और वृक्ष वल्कलों से वस्त्र बनाने से पशुओं का पालन और वृक्षों को प्रीत करते थे।

इस प्रकार हमारे बौद्धिक स्थान केवल आध्यात्मिक केन्द्र ही नहीं, आर्थिक उन्नति के भी केन्द्र थे। हमारी आज की शालाएं भी अपने आसपास के गांवों में सहयोग करें। धान्य उत्पन्न करें, पशु पालें, सूत कातें, कपड़े बुनें, वे अपनी सारी आवश्यकताएं विज्ञान की सहायता से श्रेष्ठतम उपायों और उपकरणों से पूरी करें, उनका अस्तित्व ही सहकारिता पर अवलम्बित उद्योगों के सहारे हो, इससे शिक्षक और विद्यार्थी तथा आसपास के लोग आवश्यकता और स्नेह के बन्धन में बंधकर अनन्त आनन्द और मुक्ति लाभ करेंगे।

इसके अतिरिक्त कृषक से हमारा खूब पास का सम्बन्ध हो, हम उनसे मिलें । उनके सुख और दु:ख में शामिल हों, उनके साथ गायें, उनकी फ़सलों पर ओले पड़ने से कांप उठें। एक बात की सावधानी अत्यन्त आवश्क है, हम उनसे आदमी की तरह मिलें, उपदेशक की तरह नहीं-हम जीवन को जीवन से केवल प्रेम के अनिवार्य संबंध के कारण मिला दें, ऐसे वातावरण में विद्यार्थी समझें कि मानवता एक दैवी वीणा है जो अपने महान् संगीत को समझाने के लिए व्याकुल है। वह शिक्षक का आदर करें किन्तु उससे डरें नहीं। मनुष्य का यह कदाचित सबसे बड़ा अपमान है कि मनुष्य उससे डरे।

ऐसे केन्द्र में जीवन सादा हो। इस बात में हम तनिक भी विश्वास न करें कि हमारी सादगी समाज की आवश्यकताओं के साथ मेल नहीं खाएगी। वीणा के अत्यन्त उलझे तारों के साथ एक सादी खूंटी केवल मेल नहीं खाती, उन तारों को भी सस्वर कर देती है।

हमारे इन केन्द्रों में हम वैदिक, पौराणिक, बौद्धिक,इस्लामी और सिख आदि सभी संस्कृतियों का समानाधीकरण विस्तार करें, चीन, जापान और तिब्बत की संस्कृतियों का उचित सन्निवेश भी आवश्यक है क्योंकि प्राचीन काल में भी भारतवर्ष अपनी सीमा तक ही संकुचित नहीं था, यह जानने के लिए कि वह सारे महाद्वीप से किस प्रकार संबंधित था हमें इनका ज्ञान आवश्यक है। यूरोप की संस्कृति की भी अवहेलना हमें नहीं करनी है। हमारे आध्यात्म की शुभकांक्षाओं के बीच उसका अर्थवाद हानि-प्रद न होगा।

जिस प्रकार कोई भी नदी अपने किनारे के बीच बहकर अनेक सहायक नदियों को अपनाकर भी आत्म अस्तित्व का गौरव ही बढ़ाती है, उसी प्रकार तब यह संस्कृति का समुदाय होकर भी हमारी संस्कृति होगी-हां।... कुसमय के पूरों से हमें सावधान रहना होगा। ❑

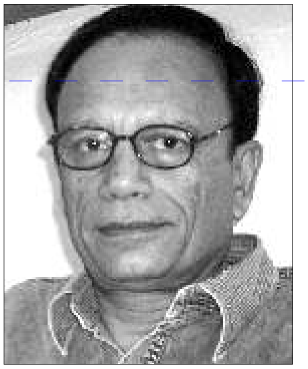

बालकों को प्रेम दें

❑

राजेन्द्र बोड़ा

मानव की यह सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वह चीजों पर तुरंत प्रतिक्रिया ही नहीं करता बल्कि अपने अंतिम फैसले पर भी पहुंच जाता है। ऐसी प्रवृत्ति हमें सामाजिक व्यवहारों में और नैतिकताओं के सवालों पर लोक में देखने को मिलती है। कहा भी गया है कि हर एक का अपना सच होता है। लेकिन सामाजिक व्यवहारों और नैतिकताओं के सवालों के जवाब या उनके सबब ऐसे नहीं समझे जा सकते।

यह कहना कि आज का बालक अशिष्ट होता जा रहा हैं तुरंत फैसले पर पहुंचने और राय बना लेने की हमारी आदत का परिचायक है। यह मुद्दा ऐसा है जो गंभीर अध्ययन और चिन्तन की अपेक्षा रखता है।

क्या सच में आज बालकों में अशिष्टता बढ़ती जा रही है? और क्या उसमें उदंडता भी बढ़ रही है? जिन बालकों के ऐसे व्यवहार को लेकर आज के बालक का जो सरलीकरण किया गया है उसे सही परिपेक्ष्य में देखना होगा।

आज के बालकों से हमारी यह शिकायत हम बड़ों की प्रभुता के क्षरण की पीड़ा है। यहां यह देखना दिलचस्प होगा कि किन परिवारों में हम बालकों को बड़ों के साथ अशिष्ट भाषा का प्रयोग करते या वह उनसे डांट डपट के भाव में बात करते देखते हैं। यह नज़ारा बहुधा नव धनाढ्य परिवारों में देखने को मिलता है। आम मध्यम वर्ग में ही यह समस्या होती है जहां अचानक पैसे की आवक बढ़ जाती है और जहां गैर जरूरी चीजों पर खर्च करने के लिए पैसा इफ़रात में हो जाता है।

हमें उन परिस्थितियों की तह में जाना पड़ेगा जिसमें बालक ऐसा व्यवहार करने लगता है। हमें समझना पड़ेगा कि बालक में व्यवहारगत बदलाव कैसे और क्यों आते हैं। बालक मां के पेट से अपने व्यवहार सीख कर नहीं आता। वह यह सब अपने अनुभवों से सीखता है। उसके अनुभव अभिभावकों की गोद से शुरू होते हैं।

हम संस्कारों की बात करते हैं। संस्कार पीढ़ी दर पीढ़ी संचित अनुभवों से पाये गए व्यवहार से बनाते हैं। एक सामाजिक व्यवस्था में कुछ व्यवहारों को शिष्ट माना जाता है कुछ को अशिष्ट। शिष्ट व्यवहार ही संस्कार बनाते हैं। यही संस्कार बाद में जाकर सामाजिक नैतिकताएं बनाते हैं।

अशिष्ट व्यवहार क्या होता है? वह व्यवहार जो हमें अप्रिय हो। हमारा अपमान करता हो। ऐसा कोई करे तो उसे हम अशिष्टता की संज्ञा देते हैं। मगर बालक की अशिष्टता कैसे परिभाषित करेंगे? वह तो अभी सीखने की अवस्था में है। वह अपने सामाजिक वातावरण से अनुभव प्राप्त करके अपनी आदतें बना रहा होता है। वह जो उसका सामाजिक वातावरण है उसे कौन बनाता है? ज़ाहिर है उसका परिवार और उसका पारिवारिक और सामाजिक परिवेश उसके व्यवहार को घड़ता है। यदि उसमें अन्यों के प्रति निरादर का भाव बनाता है और जो उसकी आदत में शुमार हो जाता है तो उसके लिए बालक को कैसे जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?

बालक को उनके आचरण अपने परिवार से मिलते हैं। यदि किसी परिवार में कोई बालक अशिष्टता का असामान्य व्यवहार करने लगता है तो यकीन मानिए वह रातों रात नहीं होता। यह बाल मनोविकृति धीरे-धीरे पनपती है। मगर इससे यह भी इंगित होता है कि उसका पालन-पोषण करने वाले खुद मनोविकृति के शिकार हैं जो किसी को दीख नहीं रहा होता है। घर परिवार के सदस्यों की कुंठाएं बाल मन को मैला करती हैं।

बाल मनोविज्ञान पर हमारे देश में ध्यान नहीं दिया गया है। जैसा कि हमने कहा कि बालकों का मनोविज्ञान मां की कोख से बाहर आने के साथ ही बनना शुरू हो जाता है।

शेष पृष्ठ २० पर...

Royal

बचपन, बच्चों के नजरिये से...

❑

बचपन, बच्चों के नजरिये
से...
बच्चे इंसान हैं
मेरी और तुम्हारी तरह
वो नहीं हैं हमारे हाथों में
बंधी हुई कठपुतली
वो पैदा हुए हैं बढ़ने के लिए,
पनपने के लिए
ढूंढने के लिए
अपना खुद का आकाश
हर बच्चा है अनोखा
अपने में अद्वितीय और
खास

हमें अनुशासन पसंद है
पर नहीं जानते हम
कि जब तक हमारे पास ना हो
अपनी 'मनाहियों' के कारण
बच्चे मान लेंगे हमारी बात
पर इसलिए नहीं कि
मानना चाहते हैं वो
सिर्फ इसलिए कि कोई
विकल्प नहीं है उनके पास
ना जाने क्यूं हम बड़े
लादना चाहते हैं
अपनी अनकही कुंठाओं,
इच्छाओं का बोझ
बच्चों पर

पर बच्चे नादान नहीं हैं
वो कहें या ना कहें
पर महसूस कर सकते हैं
हमारा बौनापन
क्यूं भूल जाते हैं
हम कि 'शोषक' से
किसी को प्यार नहीं होता

बच्चे नहीं हैं,
शतरंज की बिसात पर
बिछे हुए मोहरे
वो बांटना चाहते हैं,
हसंना चाहते हैं
खेलना चाहते हैं
और चाहते हैं अध्यापक से
सबके लिए प्रशंसा और प्यार
बच्चे खेलते हैं,
क्योंकि खेलना चाहते हैं वो
वो खेलते हैं सीखने के लिए
बढ़ने के लिए
तलाशने के लिए, अपना
वजूद
वो हराने के लिए नहीं खेलते
और नहीं खेलते इसलिए
कि दिखा सकें
दूसरे पर अपनी सत्ता

बच्चों की जरूरत है
बेहतर करना, सीखना
कोई दूसरा
प्रोत्साहन नहीं चाहिए उन्हें
कुछ अच्छी तरह कर लें
यही इनाम है उनके लिए
हम खत्म कर देते हैं
बच्चों का अनोखापन
अपनी 'तुलना' के खेल में

सच है शायद,
आज के बच्चे कल के नेता
होंगे
पर क्यूं भूल जाते हैं हम
कि दुनिया को चाहिए
ऐसे भी लोग
जो बन सकें टीम का हिस्सा
कर सके मिलकर काम
एक साझा मकसद के लिए
स्कूलों की चिंता है नतीजों की
उसे जांचने की
जो सिखा सकते हैं वो
फिर बचा क्या ! प्यार,
सहयोग
कह पाना अपने मन के
भाव जब जरूरत हो,

या कि वक्त पड़ने
पर रोक सकना
अपनी भावनाओं का गुबार
रच सकना सच की दुनिया में
सपनों का आकाश

अगर तुम्हें चुनना हो कोई
दोस्त
क्या तुम चुनोगे उसे
जिसके कोट पर टंगा
हो सोने का तमगा !
या कि ढूंढोगे,
एक उजली-दोस्ताना
मुस्कुराहट
एक ऐसा साथी जो बांट सके
तुम्हारे साथ अपनी हंसी
या कि अपने जिंदादिल
चुटकुले या

कहानी से
पल में 'छुमंतर' कर दे
तुम्हारा हर तनाव

बच्चे कभी बन जाते हैं बड़े
और बड़े अचानक
लगने लगते हैं
बच्चों से
बहुत मुश्किल है कहना
कि कब खेल खत्म होता है।
और शुरू होता है
जिन्दगी का कारोबार
आओ इस सच को मान लें
और शुरू करें एक बार फिर
बच्चों को समझने के
अपने सफर की शुरूआत।
❑

आनन्द लक्ष्मी की कविता
अनुवादक– शुभांगी शर्मा

पृष्ठ १५ से आगे ...

जब तक बालक नियमित स्कूल में भर्ती होता है वह अपने परिवेश से बहुत कुछ हासिल कर चुका होता है। फिर स्कूल में जो पढ़ाई होती है वह उसी समझ को स्थापित करती जाती है।

हमारा आज का परिवेश हमारे पुराने देशज संस्कारों वाला नहीं रह गया है। उसके कारणों को समाज और अर्थ विज्ञानी बखूबी समझा सकते हैं। हम बदलते परिवेश में जीवन बिता रहे हैं। हम ऐसे संक्रमण काल में रह रहे हैं जब यह बदलाव तेजी से हो रहा है। सच बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति तेजी से आ रहे इस बदलाव में अपने आपको असहज महसूस कर रहा है। उसका अंतरतम कहीं न कहीं अपने विगत से ऐसे जुड़ा होता है जिसमें हर पुरानी चीज आनंददायी लगती है नॉस्टेल्जिक लगती है। अब जीवन पहले जैसा सहज और सरल नहीं रह गया है। बदलाव हमें तनाव देता है और हम मन ही मन आज्ञात आतंक में रहते हैं।

मगर मानव की यह भी खूबी है कि वह दोष अपने में नहीं पाता अपितु अपनी समस्या के लिए दूसरे को ज़िम्मेदार मानता है। उसका अहंकार उसे अपनी गलती नहीं मानने देता। यहीं से शुरू होता है बालकों के अशिष्ट होने की जिम्मेदारी उन्हीं पर डालना।

राज्य की आर्थिक नीति और व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था पर असर डालती है। बाज़ार आधारित अर्थ व्यवस्था व्यक्ति को पूंजी के चक्र का एक पुर्जा बना देती है और उसे कमजोर करती है। ऐसा कमजोर व्यक्ति शिकायतें तो कर सकता है मगर अपनी दृढ़ता नहीं दिखा पाता।

नए जमाने के तकनीकी युग में बालक का भौतिक जगत से व्यापक परिचय हो रहा है। वह अपनी पिछली पीढ़ी से अधिक जानकारियां लिए हुए होता है। नई जानकारियों से पुष्ट बालक अपने अभिभावकों के लिए चुनौती होता है। ऐसा बालक सूचनाओं को ज्ञान समझ बैठता है और इसी आधार पर बड़ों को चुनौती देने लगता है। ऐसे मानसिक विकास में उसे सही मार्गदर्शन की जरूरत होती है जो उसे न घर में न स्कूल में मिलता है।

यह भी देखा जाता है कि किसी बालक में ऐसे व्यवहार का जब पहली बार प्रदर्शन होता है तो उससे अभिभावक प्रफ़ुलित होते हैं और लाड़-प्यार में नहीं जान पाते कि यह अशिष्टता का व्यवहार उसके बाल मन में बीमारी की तरह घर कर रहा है। जब यह एहसास होता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

बाल मनोविज्ञान के लिए बाद में हम उसी पश्चिम की तरफ देखते हैं जिसकी हम शिकायत करते हैं कि वहां की संस्कृति हमारे बच्चों को बिगाड़ रही है। मगर हम गिजुभाई को नहीं पढ़ते जो अभिभावकों को बाल मन को समझने का रास्ता सुझाते हैं।

खलील जिब्रान ने कहा था : तुम बालकों को प्रेम देना, लेकिन आचरण नहीं; तुम प्रेम देना, लेकिन अपना ज्ञान नहीं। तुम प्रेम देना और तुम्हारे प्रेम के माध्यम से स्वतन्त्रता देना, ताकि वे वही हो सकें जो होने को पैदा हुए हैं। तुम उनकी नियति में बाधा मत डालना। लेकिन सच तो यह है कि अभिभावक इस प्रेम का आशय नहीं समझ पाते और बालकों को मनोविकारों में धकेल देते हैं। ❑

ई-१, गांधी नगर क्लब के पास, गांधी नगर, जयपुर

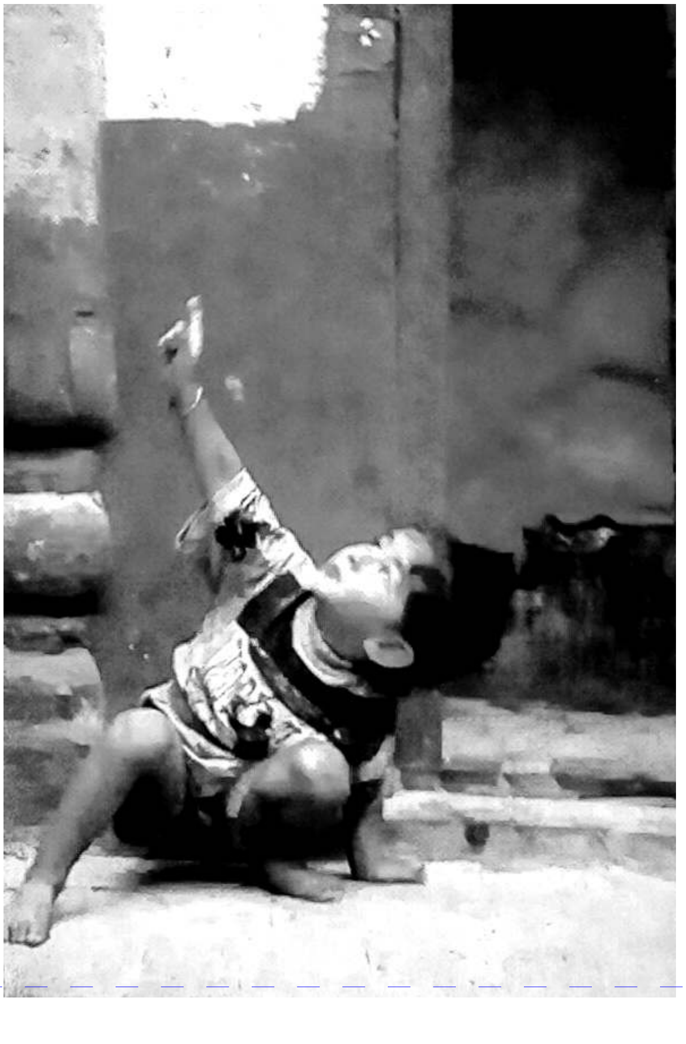

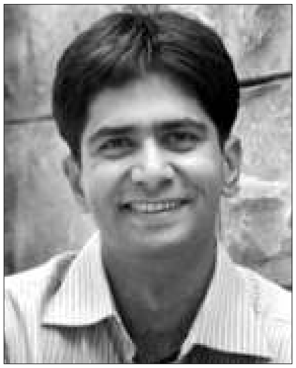

अंतराल
हमारी शाला और घर के बीच का आकाश...

❑

अमित कल्ला

पिछले दिनों राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति जयपुर, नाना-नानी न्यास और रमता दृग के सायुज्य से समिति परिसर में जीवन में नया सीखने की सहज और सतत प्रक्रिया को एक अलग तरीके से अनुभव करने के लिहाज़ से आठ से चौदह वर्ष तक के अठाइस बच्चों के लिए दो दिवसीय आवासीय मशपवर 'अंतराल' का आयोजन किया गया, जो अपने आप में बेहद अनूठा, रोमांचक और बाल मन की अनेक संभावनाओं को तलाशने और तराशने वाला प्रक्रिया आधारित संयोजन रहा, जिसके मुत्तलक विभिन्न सधर्म सहयोगियों के मार्फत बच्चों के द्वारा शिक्षा से जुड़े कई आयामों को अंतरंगता से एक नयी कैफियत के साथ जानने, समझने और उन्हें दो पल के लिए ही सही लेकिन भरपूर जी लेने की कोशिश की गयी।

अंतराल न केवल एक शाब्दिक प्रतीति की प्रतिध्वनि रही बल्कि जिन्दगी से मुखातिब होते सपनों के अनेक अर्थों को गहराने वाले उस रचनात्मक समय को अपने भीतर संजोने की उम्दा कोशिश थी। समिति अध्यक्ष और शिविर की संकल्पना करने वाले शिक्षाविद् रमेश थानवी के शब्दों में 'अंतराल हमारी शाला और घर के बीच का आकाश है, जो हमारा अपना है, आनंद का मनचाहा अवसर है' यक़ीनन वह ऐसा अनन्य अवसर बनकर सामने आया जिसकी किसी ने भी कल्पना नहीं की थी। जिसमें शब्द, भाव और दृश्य तीनों ही कहीं पीछे छूटते नज़र आ रहे थे। बच्चों के द्वारा पल-पल अनुभव की नूतन परिभाषायें गढ़ी जा रही थी । इसे नए सुवास, संभावनाओं, सम्प्रेषण और निसर्ग के सौन्दर्य की संगत कहा गया तो किसी के द्वारा पर्यावरण और परिवेश को जानने समझने की सहज पाठशाला के रूप में देखा गया, अमुमन हम सबके लिए अंतराल शब्द के अलग-अलग अर्थ रहे जिसमें कहीं बिम्ब थे तो कहीं प्रतीक जिनके मतले बेहद खूबसूरत थे। जिसे सभी अपने अपने नजरिये से देख रहे थे। जहां ठहराव का संभावित सानिध्य था, उमंग, उत्साह की लहर और असीम मत वैविध्यता का विस्मय था जिसे इन चुनिन्दा शब्दों में समेटना बेहद मुश्किल जान पड़ता है जिसका मर्म खालिस अनुभव के सत्व में रचा-बुना नित्त: का संगी है।

इसके पीछे अगर हम थोड़ा देखें तो मालूम चलता है कि आज के इस भागते-दौड़ते समय में हमारी समूची शिक्षा महज़ किताबी और वर्चुअल दुनिया में सिमटती जा रही है जिसे हम सभी अपने-अपने परिवारों में अनुभव कर रहे हैं। जब बच्चों की बात आती हैं तो यह मसला ज्यादा गहराता मालूम पड़ता है, जहां मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों का सहज सम्प्रेषण भी वर्चुअल दुनिया के लबादे में परोसा जा रहा है दादी नानी जैसे आत्मीय संबंधों का स्थान-मोबाईल फोन, टेलीविजन, वीडियो गेम्स इत्यादि ने ले लिया है, लिहाजा लम्बे समय से सभी को एक ऐसे ही किसी अंतराल की जरूरत महसूस हो रही थी। स्वाभाविक रूप से जो हमारा अपना हो,

जहां समता, सहजता और संभाव्य का सौन्दर्य महसूस किया जा सके।

इस शिविर में विभिन्न विषयों जैसे **आकाश दर्शन, भारत के ऐतिहासिक स्मारकों की कहानी, ललित कलाओं के विभिन्न आयाम, डिजाइन की दुनिया, सुगंध, रस और स्वाद के रसायन, जीवन में गणित का सरलतम उपयोग, सेहत और तंदुरुस्ती,** बच्चों के लिए लोक जीवन से जुड़ी कथात्मकता और ड्रामा के माध्य से पर्यावरण और समाज के अनेक पहलुओं को जानने की अर्थपूर्ण कोशिश की गयी। अनौपचारिक वातावरण की प्रसारणा जिसका मूल वाक्य रहा। शिविर में राजेन्द्र बोड़ा, विलास जाह्नवे, इन्द्रजीत बोस, चन्दन शर्मा, ए लतीफ उस्ता, अंचिता नाथा, अविना कल्ला, ताबिना अंजुम, हिमांशु व्यास, हनुमान सहाय शर्मा समेत कई शिक्षाविद् और कलाकारों ने विभिन्न विषयों पर बच्चों के साथ रचनात्मक कार्यशालाओं का आयोजन जिसकी बानगी देखते ही बनती थी। जहां इन सभी मेंटरों को बच्चों के साथ भावनात्मक जुड़ाव और आत्मीयता का सीधा सम्प्रेषण हुआ।

पहला दिन छह अप्रेल, शनिवार

अंतराल शिविर के संयोजक डॉ. मनीष शर्मा द्वारा समूचे शिविर के दो दिनों को विषय और समय क्रमानुसार विभिन्न सत्रों के अंतर्गत बाटा गया जिससे समय के प्रबन्धन की उपयुक्त व सहज व्यवस्था बन पायी। जहां पहला सत्र सुबह नाश्ते के बाद आपसी परिचय का रहा जिसे अविना कल्ला, हिमांशु व्यास और विलास जाह्नवे ने विभिन्न वाद्य यंत्रों के सुरमयी संगीत के साथ एक अलग ही अंदाज में संयोजित किया। प्रतिभागियो ने एक दूसरे के नाम, उनके अर्थ और उनसे जुड़ी अनेक बातें बड़े ही विस्तार से साझा की। जिससे खेल-खेल में सभी एक दूसरे को अच्छे से जान पाए और वहीं से आपस में दोस्त बनने-बनाने के सिलसिले की शुरुआत हो गयी। अंगद, झनक, रुद्र, मेहुल, कार्तिक, नव्या, मानन्या, कनुप्रिया, सार्थक, सिद्धार्थ, कनिष्क, विशेष, अदिति, फरहान, प्रियांश, सांझी, कबीर, गर्व, अबराम, पुलकित, हिमांशु, तन्मय आशीष, कृतिका, नीरजा सबकी आपस में गहरी दोस्ती हो गई। वहीं सुनीता आंटी भी सभी बच्चों के साथ अनायास ही आ जुड़ी। बतौर ऑब्जर्वर वे पूरे दो दिन साथ रहीं। उन्होंने भी इस नयी तालीम के फलक पर उतरे इन्द्रधनुष के अलग-अलग रंग और स्वाद चखे। इसी दौरान देश के नामी मूर्तिकार हिम्मत शाह का भी अचानक शिविर में आना हुआ। वे मुंबई के कला फिल्मकार रविशेखर को लेकर समिति आये थे। हिम्मत शाह ने भी बच्चों से खूब बात की, बड़ी बेबाकी से उन्होंने सबको भरपूर प्रेरणा दी। चाक चलाने को प्रोत्साहित किया और माटी का महत्व बतलाया, उनकी बातचीत अंतराल के लिए एक धरोहर साबित होगी।

दूसरा सेशन गणित में गोते लगाने का रहा जहां पूरे समूह को दो भागों में बांट कर अलग-अलग जगहों पर ले जाया गया। जिसे स्टारलाइट संस्थान से आये चन्दन शर्मा और

जाने-माने गणित के शिक्षक हनुमानसहाय शर्मा ने लिया। चन्दन अपने समूह को समिति परिसर के पीछे वाले हिस्से में लगे जामुन के पेड़ों के नीचे ले गए, जहां उन्होंने पत्तों, बिखरे छोटे पत्थरों और बच्चों का ग्रुप बनाकर गणित की पेचीदगियों को खोलना शुरू किया । ये सब देखकर गुरुदेव टैगोर के शांति निकेतन के आम्रकुंज की याद आ रही थी जहां कभी ऐसी कक्षाएं लगा करती थीं। चन्दन में एक समर्थ शिक्षक की छवियां आभासित हो रही थी। चिन्तक गिज्जू भाई बधेका के समग्र का अध्ययन उनकी तहजीब में छलक रहा था। उनकी भाषा भंगिमा नवाचार की फुहारें बिखेर रही थी जिसकी बारिश में बच्चों के साथ हम सभी भीग रहे थे। वहीं दूसरा समूह जो हनुमानसहाय के साथ था। ऊपर वाले बड़े हॉल में गणित के जटिल सवालों को सुलझाने में लगा था, इस ग्रुप के बच्चे थोड़े बड़े थे, हनुमानसहाय उन्हें कई तरह के खिलौने दिखा रहे थे, जिन्हें खोलने पर रेखा गणित के सूत्र खुलते जाते हैं, जिनमें माचिस की तीलियां, कोण, वृत्तिकाएं इत्यादि शामिल थीं। ये सारा नियोजन बिन बोरियत के खेल-खेल में चलता था।

दोपहर का भोजन भी सबने साथ ऊपर बने शाकाहार में किया जो सादा होने के बावजूद स्वादिष्ट था। सभी ने अपनी-अपनी थालियों में जरूरत के मुताबिक रोटी, सब्जी, दाल, चावल, रायता, सलाद, पापड़ और सूजी का हलवा लिया। मजे की बात ये रही की नाटककार विलास जाह्नवे द्वारा बीच बीच में करवाई जा रही मस्तियों के कारण सबको जमकर भूख लगी और किसी ने भी खाने को झूठा नहीं छोड़ा। इसके बाद अब समय आराम का था सभी बच्चे और बड़े अपनी-अपनी डोरमेट्री में गए। कुछ इधर-उधर फोयर यानी गांधी चौक में खेल रहे थे। इस दौरान बिस्तरों पर कब्जा करने की प्रक्रिया भी शुरू हुई और साथ ही लड़कों वाली डोरमेट्री में पिलो फाइट (तकिया मार खेल) का भी आगाज हुआ। जिसकी सुगबुगाहट नीचे हम तक पहुंच रही थी। कृतिका ने बताया कि दूसरी तरफ सबसे छोटी बच्ची झनक अपने साथ कई सारी किताबें लायी है जिसे अपने नए दोस्तों के साथ पढ़ रही है। सुनीता आंटी और अविना दीदी के लिए भी हमने अपने साथ रात को सोने के लिए बिस्तर लगा दिए हैं।

तकरीबन ढाई बजे के दरमियां सभी एक बार से बड़े हॉल में आ गए तब तक इन्द्रजीत बोस भी आ चुके थे और वे अपने साथ ढेर सारा सामान लाये जिनमें टेप, कागज, खेलने की गेंद, रिबिन, रबड़, डोरियां थीं, जिसका उपयोग कर उन्हें डिजाइन पर सेशन लेना था। इन्द्रजीत जाने-माने डिजाइनर हैं। उन्होंने एन आई डी से अपनी पढ़ाई की है। वे अपने विषय को लेकर बेहद संवेदनशील और जागरूक हैं। सबसे पहले उन्होंने एक छोटी सी फिल्म दिखायी और वहां से बच्चों के साथ संवाद शुरू हुआ जो कल्पनाओं के असंख्य लोगों की रोमांच भरी यात्रा था । इस बीच उन्होंने पूरे ग्रुप के चार समूह बनाये और उन्हें साथ लाया सामान दिया, जिससे कुछ-कुछ बनाना था । ये एक किस्म की एक्टिविटी थी जिसे करने में सभी को मजा आया। खेल-खेल में डिजाइन के सबक सीखे गए। इस पूरे प्रोसेस के दौरान संगीत भी बजता रहा जिस पर बच्चों के साथ औनपचारिका पत्रिका की संपादक प्रेम गुप्ता समेत सुनीता आंटी ने भी जमकर डांस किया। देखकर ऐसा लग रहा था मानो कोई फिल्म चल रही हो जिसे देख हम सब खोये थे। ये सत्र लगभग चार घंटे चला और अब शाम होने को थी तो सभी को विलास जाह्नवे के थियेटर सेशन का इंतजार था। दिन

भर की थकान के बावजूद जिसकी गतिविधियां तन-मन को लुभा रही थी, जिसमें अलग-अलग आवाजें निकालने से लेकर मुकाभिनय के अभिनव खेल सम्मिलित थे।

इसके बाद वरिष्ठ पत्रकार राजेन्द्र बोड़ा ने राजस्थानी भाषा के कई प्रारूप बतलाये। उन्होंने देशज भाषा में दो सुन्दर कहानियां कहीं और कई साहित्यकारों के नामों से परिचय करवाया। जिसे सभी ने बड़ी गंभीरता से सुना, उन्होंने राजस्थानी शब्द कोष, मुहावरे, लोकोक्तियां और बोलचाल की भाषा में काम आने वाले शब्दों से भी रूबरू करवाया। जिसका उद्देश्य अन्य भाषा को जानने के साथ उसके प्रति सम्मान के भाव को पोषित करना था। अमुमन सभी प्रतिभागियों ने उनके साथ संवाद में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। राजेन्द्र जी ने राजस्थानी भाषा में खबर भी पढ़कर सुनाई। जिन्हें वे कई बरस पहले आकाशवाणी के जयपुर, अजमेर केन्द्र पर पढ़ा करते थे, जिसे सुनना सब के लिए एक नया व सुन्दर अनुभव था।

रात के खाने के बाद लगभग नौ बज रहे थे। हम सभी एक बार फिर से ऑडिटोरियम में जुट गए जहां अंचित और भुवन दो युवा एस्ट्रो फोटोग्राफर हमारा इंतजार कर रहे थे। उन्होंने पहले अंतरिक्ष की गतिविधियों पर बनी छोटी फिल्म दिखायी। फिर अपने कैमरे और अन्य उपकरणों के बारे में बतलाया। जिसका क्रम एक घंटे चला । फिर हम सभी समिति की छत पर जा पहुंचे जहां सभी तारे और आकाश गंगा देखने को लालायित थे, बच्चों में शांत भाव नजर आ रहा था। जहां तारों की दुनिया को करीब से जानने की बेतहाशा ललक साफ दिखाई दे रही थी। नव्या और नीरजा का स्वत: अनुशासन दूसरे प्रतिभागियों के लिए अनुकरणीय था। अब रात के ग्यारह बजने को थे और आसमान अधिक गहरा हो चला था लेकिन शुक्र था कि बादल छट चुके थे और तारे साफ-साफ दिख रहे थे।

एक दो बच्चों को छोड़कर किसी का भी सोने का मन नहीं था। खेलने की चाहना आधी रात को भी हिलोरे ले रही थी। लड़कों की डोरमेट्री में घमासान मचा था। कार्तिक, कनिष्क, रुद्र, विशेष पकड़म-पकड़ाई और तकियों से मारा-मारी कर रहे थे। गर्व और अंगद मच्छरों से दो-दो हाथ कर रहे थे। प्रियांश, हिमांशु और अबराम बढ़िया नींद का लुफ्त ले रहे थे। वहीं दूसरी तरफ कृतिका, सांझी, नव्या, कनुप्रिय भी फोयर में दौड़ रही थीं। अविना और सुनीता आंटी उन्हें सुलाने की भरसक कोशिश कर रहीं थीं। मनीषजी जिम्मेदार प्रशासक की तरह बार बार बच्चों की गिनतियां कर रहे थे। जहां कभी कोई टॉयलेट भागता तो कभी कोई उन्हें देखकर पलंग के नीचे छिप जाता। यकीनन बड़ा मजेदार सीन था। रात दो बजे जाकर सबको नींद आयी। अंगद और मेहुल को अगले दिन की बैचेनी थी वे चाहते तो रात में ही सुबह उगने वाले सूरज को नींद से जगा देते।

दूसरा दिन, सात अप्रेल रविवार

सुबह सात बजे सभी बच्चे जाग चुके थे। इधर विलास जाह्नवे ने अपने पिटारे में से तरह-तरह की हाथ से संचालित होने वाली पपेट्स निकालनी शुरू की जिनमें जानवर, पक्षियों के अलावा इंसानी चरित्र भी थे। जिन्हें नचाने में बच्चों को बड़ा मजा आ रहा था। विलासजी पूरे ग्रुप को बाहर बगीचे में ले गए और उन्हें कई तरह के व्यायाम करवाए। उसके बाद पीछे की तरफ गए जहां पेड़ लगे थे। सबने माटी और पेड़ों के रिश्तों के बारे में बात की। कली, फूल, पत्तियों के स्वभावों को समझा। मिर्च, आंवला, आम, अनार, जामुन, सीताफल, और छोटे - छोटे कढ़ी पत्ती के पौधे देखे। तब तक हमारा नाश्ता तैयार था।

हम सब नाश्ता करते उससे पहले पेड़ों के पंप से पानी चलता देख वहीं पाइप से नहाने का मन हो गया। एक-एक कर सभी बच्चे आ गये, और भागने लगे। सांझी, मनन्या, नव्या, अदिति और कृतिका ने सबको गीला किया। जिसमें मैं भी पीछे न रहा सार्थक और रूद्र को पानी वाले इस खेल में सबसे ज्यादा मजा आया। मेरे लिए वे पल सुनहरे बचपन में लौटने जैसे थे।

पहले दिन की भांति आज भी कई तरह के सत्र होने तय थे। जिस क्रम में सबसे पहला रचनात्मक लेखन और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति से जुड़ा था। जिसे **ए.लतीफ उस्ता** द्वारा किया गया। उस्ता जी जवाहर कला केन्द्र में क्यूरेटर हैं। रचनात्मक शैली में काम करने के उनके कई अनुभव हैं जिन्हें उन्होंने हमारे बीच बड़े सलीके से बांटा। उनकी पूरी प्रक्रिया में सभी की भागीदारी महत्वपूर्ण थी। जो काफी हद तक सार्थक भी रहा। जिसमें हर एक बच्चे की अपनी भूमिका थी जो उनके प्रस्तुतीकरण के दौरान सामने आ रही थी। इसी सत्र को आगे बढ़ाते हुए रमेश थानवी जी ने समूह से बात शुरू की। उन्होंने समाज सेवी बाबा आम्टे के जीवन के कई प्रसंग सुनाये। आनंदवन और उसके बनने के संदर्भ से जुड़े वाकिये साझा किये। इसी श्रृंखला में सभी ने प्रकाश आम्टे पर बनी एक लघु फिल्म भी देखी। जो अपने आप में प्रेरणा देने वाली थी। जिसमें जंगली जानवरों की उपस्थिति उसे और ज्यादा रोमांचक बना रही थी।

दोपहर के भोजन के बाद अब समय था ताबिना अंजुम की खिंची तस्वीरों के मार्फत कश्मीर के जीवन और वहां की संस्कृति से रूबरू होने का। ताबिना मूल रूप से कश्मीर की हैं। श्रीनगर में उनका घर है । वे कई बरसों से जयपुर में रहकर पत्रकारिता करती हैं। रेत और बर्फ के बीच इंसानियत के नायाब रिश्ते बुनती रहती हैं। उन्होंने अपने कैमरे से खींची सैकड़ों तस्वीरें दिखायीं, रबाब और संतूर का संगीत सुनाया। शिकारा, कांगड़ी, फिरन दिखाकर कश्मीरी पेय काह्वे का स्वाद चखाया। शंकराचार्य, हरिपर्वत, हाउसबोट, झेलम, चिनार, सेब के बाग, केसर की क्यारियां, अलग-अलग मौसम, बर्फ, बादल, फोटोग्राफ्स के माध्यम से बच्चों ने बहुत कुछ अपने ही किस्म की एक पूरी यात्रा की और जिस पर खूब सवाल-जवाब हुए।

अब तकरीबन शाम के पांच बजने को थे। अभिभावकों का आना भी शुरू हो चुका था। समिति का सभागार खचाखच भर गया था। वहां मस्ती के साथ थोड़ी मायूसी भी थी। कोई भी वापस घर नहीं जाना चाहता था। सभी कुछ और दिन रहना चाहते थे। हमें भी यकीन नहीं हो रहा था कि अब समापन सत्र है। ऐसा लगा मानों अभी तो सब कुछ शुरू हुआ है। बहरहाल बच्चों के साथ उनके अभिभावकों ने अपने विचार साझा किये। अलग-अलग विषयों के संदर्भ सहयोगियों ने भी अपने अनुभव बतलाये। विलास जाह्नवे जी के गीत पर हिमांशु भाई ने माउथऑर्गन पर संगीत की धुन बजायी। हमारे चित्रकार मित्र और नव्या, मनन्या के पिता सोजन जाखड़ के सहयोग से एक खूबसूरत प्रमाण पत्र भी तैयार हुआ। जिसे थानवी साहब ने खलील जिब्रान की कविता 'तुम्हारे बच्चे तुम्हारे नहीं हैं' के साथ सभी प्रतिभागियों को देकर सम्मानित किया। उन्होंने शिक्षा में सहज लर्निंग की परंपरा के कई बिम्ब उजागर किये। समाज और परिवारों से बच्चों के लिए समय ऐसे अंतरालों को रचने की गुजारिश कर आनंद के मनचाहे अवसरों के प्रति संवेदनशील होकर सोचने की बात पर जोर दिया। पुस्तकों के महत्व को बतलाते हुए हमारे जीवन और घरों में उनकी पवित्र उपस्थिति की विभिन्न दर्शनाओं पर प्रकाश डाला।

वहां बैठे हर एक व्यक्ति को जीवन में ऐसे अंतरालों की बेतहाशा जरूरत महसूस हुई जो मनचाहे अवसरों की अनेक सतहों को खोलता यकीनन उसका अपना हो। ❑

४३, जोशी कॉलोनी, बरकत नगर, टोंक फाटक, जयपुर

पढ़ना इबादत है

पिछले महीने १८ और १९ अप्रेल को जन कला साहित्य मंच संस्था द्वारा चलाए जा रहे आर्टिजन रिसोर्स सेंटर के आर्टिजन्स के साथ संवाद करने का अवसर मिला। इन आर्टिजन्स से मिलने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के कुछ साथी १८ अप्रेल को बगरू और १९ अप्रेल को कालाडेरा पहुंचे।

बगरू और कालाडेरा में छपाई का काम करने वाले असाक्षर महिलाओं और पुरुषों के लिए साक्षरता कक्षाओं का आयोजन किया जाना है। इन्हें पढ़ाने वाले लोगों की पहचान कर उन्हें प्रशिक्षण भी दिया जा चुका है। अब इनकी कक्षाओं की शुरूआत होनी है। इससे पहले यह तय किया गया कि उन असाक्षर आर्टिजन्स से भी एक बार मुलाकात की जाए जो साक्षरता की कक्षाओं में आने के लिए तैयार हैं। उनसे यह जाना जाए कि उन्हें साक्षरता की जरूरत अब क्यों पड़ रही है? इसी उददेश्य से इन दोनों जगहों पर जाने का निर्णय लिया गया।

बगरू पहुंचने पर निराशा हुई, क्योंकि लोगों की संख्या बहुत कम थी। लेकिन एक ६२ वर्षीय महिला का साक्षरता के प्रति जुनून देखकर सारी निराशा थोड़ी देर में काफूर हो गई। उस महिला से बात करने में बहुत आनंद आया। महिला का नाम नौरती था। हालांकि शुरू में उनका मानना था कि अब ये कोई उम्र रह गई है क्या पढ़ने की। पर थोड़ी देर की बातचीत के बाद जैसे उनका हृदय परिवर्तन हो गया। वे पीछे बैठी थीं, पीछे से आगे आकर बैठ गईं। बचपन से पढ़ने को लेकर उनके मन में जो ललक थी वे बयां करने लगीं। उनकी बहू भी उनके साथ थीं और वे भी बता रही थीं कि उनकी सास ने कई बार उनसे पढ़ाने की अपनी इच्छा जाहिर की थी। बातों-बातों में पता चला कि बहू का नाम था उषा और यह नाम उनकी सास नौरती ने ही उन्हें दिया था। क्योंकि उनका पहले वाला नाम उन्हें पसंद नहीं आया था। हालांकि हमें यह पता नहीं चला कि उनका नाम पहले क्या था। जब हम वहां से उठने लगे तो उन्होंने कहा कि कोई आए या न आए मैं तो पढ़ने आऊंगी।

इस दिन जिन मुद्दों पर वहां मौजूद लोगों से बातचीत हुई वे मुद्दे थे ज्ञान, प्रेम, सत्य, पाप-पुण्य, इबादत, हुनर, हाथ का काम, क्रोध, अहंकार, हिंसा आदि-आदि। समिति के अध्यक्ष रमेशजी ने इन सब मुद्दों को अपने उद्बोधन में समेटते हुए कहा कि सबसे बड़ी पढ़ाई प्रेम की पढ़ाई है। सबसे बड़ी पूजा काम की पूजा है। उन्होंने कबीर के दोहे 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ...पढ़ै सो पंडित होय' का संदर्भ लिया। उनका कहना था कि अगर मन में क्रोध, हिंसा, अहंकार और असत्य हो तो सारी पढ़ाई धूल है। उनका कहना था कि पढ़ लिखकर समाज बंदगी करे, गंदगी न करे। हर प्राणी जीना चाहता है। उसे यह हक न देना सबसे बड़ा पाप है। पढ़ाई पाप करना नहीं सिखाता है, पुण्य सिखाती है। पढ़ना इबादत है।

वहां से निकलकर हम सब बगरू गांव में पहुंचे, जहां जे.सी.बी. के सहयोग से लेडी बैम्फोर्ड चैरिटेबल ट्रस्ट की ओर से व्यावसायिक कौशल की कक्षाएं आयोजित की जाती हैं। स्वयं सहायता समूहों का संचालन किया जाता है और अब इन समूहों की असाक्षर महिलाओं की साक्षरता के लिए समिति के सहयोग से प्रयास किया जा रहा है। वहां पर साक्षरता कक्षाओं का संचालन करने वाली तथा साक्षर होने वाली महिलाओं का समूह एकत्रित था। वहां साक्षरता कक्षाओं का संचालन शुरू हो चुका है, इसलिए उनसे कक्षाओं के अनुभव पर हमारी बातचीत हुई। कक्षा संचालित करने वाली महिलाओं से पूछा गया कि सबसे अधिक कठिनाई उन्हें कब हुई तो एकमत से उनका उत्तर था महिलाओं को कक्षा तक लाने में। मैंने अनौपचारिक बातचीत करते हुए एक महिला से पढ़ाने के तरीके के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि वे आई पी सी एल मेथड से नहीं बाहरखड़ी से ही महिलाओं को पढ़ा रही हैं। एक अन्य महिला के बारे में भी उन्होंने मुझे बताया कि वे भी ऐसे ही पढ़ा रही हैं इसका प्रमाण उनके द्वारा दी गई शीट्स को देखने से भी मिला। वहां

पर उनके अनुभवों को सुनने के बाद हम वापस अपने कार्यालय आ गए।

दूसरे दिन मैं और बटीनाजी सुबह ग्यारह बजे कालाडेरा पहुंचे । यहां संभागियों की संख्या पिछले दिन से अधिक थी। यह केंद्र छीपा समाज के सामुदायिक भवन में चलता है। आज की हमारी बातचीत का मुद्दा साक्षरता तो था ही साथ ही हमने लोकतंत्र, चुनावी साक्षरता सामाजिक कुरीतियां, स्वयं सहायता समूह की गतिविधियां, सामान्य ज्ञान आदि मुद्दों पर भी बातचीत की।

कालाडेरा में जन कला साहित्य मंच द्वारा चिह्नित असाक्षरों की संख्या अधिक है। पढ़ना-लिखना सीखने का कारण पूछने पर बताती हैं कि अब असाक्षर कहलाना पसंद नहीं है। कम से कम इतना तो पढ़ लिया जाएं कि अखबार पढ़ लें। धार्मिक किताबों को पढ़ने के लिए किसी का मुंह न देखना पड़े। उनका कहना था कि वैसे तो हिसाब-किताब वे कर लेती हैं। बाजार से सामान लाने में कहीं ठगी भी नहीं जाती हैं। पर जब बात लिखे हुए हिसाब की आती है तो वहां पर उन्हें दिक्कत आती है और वे अपनी इस दिक्कत को दूर करना चाहती हैं। बात-बात में किसी ने यह शंका भी जाहिर कर दी कि इस उम्र में पढ़ना-लिखना तो बहुत कठिन काम है। इस पर काफी देर तक चर्चा हुई। बात हुई कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती। सीखना सबसे ज्यादा हमारी इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है। हम कोई भी नई चीज सीखते हैं। हमें दिक्कत आती है अगर हमारी रुचि उसमें है तो वह आसान लगता है। अगर नहीं तो वह मुश्किल लगने लगता है और हम पीछे हट जाते हैं। सीखने का सबसे अच्छा तरीका है हार मत मानो क्योंकि मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

लोकतंत्र पर बात करते हुए संसद, लोक सभा, राज्य सभा, विधान सभा आदि के बारे में चर्चा की गई। लोकतंत्र में चुनाव का महत्व और चुनाव में एक-एक वोट की कीमत पर भी चर्चा हुई। मतदाता के रूप में मतदान करना हमारा अधिकार भी है और कर्तव्य भी। एक मतदाता के रूप में अच्छे उम्मीदवार के चयन में हमें अपने विवेक का इस्तेमाल करना चाहिए न कि किसी के कहने में या दबाव में आकर हमें मतदान करना चाहिए। क्योंकि हमारा मत गोपनीय रहता है। वहां उपस्थित सभी लोगों से यह अपील की गई कि वे अपने मताधिकार का प्रयोग अवश्य करें।

स्वयं सहायता समूह के बारे में बात करते हुए यह महसूस हुआ कि सभी महिलाएं इस समूह का उपयोग केवल बचत के लिए ही करती हैं और एक दिन आकर अपने पैसे जमा करवा देती हैं। जबकि समूह के स्तर पर कई तरह की गतिविधियां भी की जा सकती हैं। इसके बारे में भी उनसे विस्तार से चर्चा की गई। समूह में की जाने वाली गतिविधियों में एक महत्वपूर्ण गतिविधि है विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर आपस में चर्चा और विचार विमर्श। ऐसा करने से उन मुद्दों के प्रति न केवल एक आम सहमति बन सकती है बल्कि विभिन्न नजरिए से देखते हुए उसके गुण दोषों की विवेचना भी की जा सकती है । इस तरह के आपसी विचार-विमर्श से सभी सदस्यों की समझ विकसित होती है। चीजों को सही, गलत के नजरिए से देखने का कौशल विकसित होता है।

इसके अलावा दहेज, कन्या, भ्रूण हत्या, बाल विवाह आदि मुद्दों पर भी चर्चा की गई। एक बहुत सुखद बात यह लगी कि बाल-विवाह की समस्या अब बहुत कम हो गई है और लोग इसके कानूनी पहलू को भी समझते हैं। माया विमला, मोहिनी, मिश्री आदि सभी ने २० अप्रेल से पढ़ने आने के लिए अपनी सहमति दी। एक अच्छी शुरुआत की कामना के साथ महिलाओं को साक्षरता के लिए शुभकामना। ❑

-रचना सिद्धा

आ गया ऐन लड़ाई मेंअगर वक़्ते निमाज़
किबला रू हो के खड़ी हो गयी सब फ़ौजे़ हिजाज़
एक ही सफ़ में खड़े हो गये महमूदों अयाज़
न कोई बन्दा रहा और न कोई बन्दानवाज़
मालिको ख़ादिमों मोहताजो गनी एक हुए
उसकी दरगाह में पहुंचे तो सभी एक हुए। ❑

-इक़बाल

''जेण्डर आधारित भेदभाव एवं बाल विवाह के खिलाफ एक साझा अभियान''

बालिका स्नेही पंचायत

महिलाओं और बालिकाओं की स्थिति का अगर विश्लेषण किया जाये तो यह पता चलता है कि पुरुष समाज की तुलना में अधिक दयनीय है। महिलायें सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा पारिवारिक प्रत्येक जगहों पर उपेक्षा की शिकार रही हैं। हमारे पुरुष प्रधान समाज ने महिलाओं तथा बालिकाओं को आगे बढ़ने के लिए प्रचुर अवसर प्रदान करना तो दूर बल्कि पुरुषत्व की व्याधि से ग्रसित होकर उनकेरास्ते में अवरोध ही पैदा किये हैं।

हमारे परिवार, समुदाय व समाज में महिलाओं को मर्यादित जीवन जीने के जैसे–समान रोजगार के अवसर, आजीविका के अवसर, सहभागिता तथा निर्णय के अवसर प्रदान किये जाने थे, वो प्रदान नहीं किये और परिणामस्वरूप हमारे देश की आधी आबादी जाने–अनजाने में मुख्यधारा से विमुख रही। उनकेयोगदान केजो लाभ हमारी प्रगति में हमको मिलने चाहिए थे उससे हमारा देश मरहूम ही रहा।

विगत २ माह से उरमूल सीमान्त समिति, अपने परियोजना क्षेत्र में बीकानेर जिले के कोलायत एवं जोधपुर जिले के बाप ब्लॉक की १० ग्राम पंचायतों को 'बालिका स्नेही' ग्राम पंचायत के रूप में स्थापित करने के महत्वाकांक्षी उद्देश्य में लगी हुई है।

भौगोलिक रूप से ये गांव थार मरुस्थल के गांव हैं तथा एक गांव से दूसरे गांव के बीच की दूरी औसतन १० किलोमीटर से भी अधिक है। न केवल गांव से गांव के बीच की दूरी काफी अधिक हैं बल्कि गांव में भी एक घर से दूसरे घर की दूरी भी ज्यादा है । लोग ढ़ाणियों में निवास करते हैं।

विकास के पैमानों पर अगर गांवों की स्थिति का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि सरकार प्रशासन तथा संस्थाओं द्वारा किये जा रहे प्रयासों के बावजूद कोलायत एवं बाप, बीकानेर एवं जोधपुर के अन्य ब्लॉकों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। कोलायत की साक्षरता दर ४५ प्रतिशत, बाप की साक्षरता दर ४३ प्रतिशत। राष्ट्रीय साक्षरता दर ७४.०४ प्रतिशत की तुलना में बहुत ज्यादा कम है।

महिलाओं की साक्षरता और शिक्षा की स्थिति अगर अलग से विश्लेषित की जाये तो और भी खराब स्थिति हमारे सामने उभर कर आती है। सामाजिक सूचकांकों पर अगर देखें तो इस क्षेत्र के गांव और समाज में जेण्डर आधारित भेदभाव की जड़े काफी गहरी बैठी हुई हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्र में आज भी बाल–विवाह जैसे अपराधों की संख्या काफी बड़ी है। लड़कियां ५वीं और ८वीं की पढ़ाई के बाद स्कूल से घर की दूरी ज्यादा होने, सामाजिक असुरक्षा की भावना और डर के कारण बहुतायत में स्कूल से ड्रॉप आउट कर जाती हैं। ग्रामीण क्षेत्र के दूर दराज के गांवों में तो आज भी ऐसी बहुत सारी लड़कियां हैं जो कभी विद्यालय गयी ही नहीं हैं।

बालिका स्नेही पंचायत की अवधारणा

१९९१ की जनगणना के आंकड़ों का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाता हैं कि हमारे देश में १९९१ के बाद से ०–५ वर्ष के बच्चों–बच्चियों के लिंगानुपात में अन्तर तेजी से बढ़ रहा है। इस लिंगानुपात तथा बढ़ते जेंडर आधारित भेदभावों को बढ़ने के अंतर को उरमूल सीमान्त ने अपने किशोर–किशोरी मंचों के माध्यम से सहभागी आंकलन करके समझने का प्रयास किया तो पंचायतों में भी स्थिति भयावह ही है। १९९१ की जनगणना में लिंगानुपात शहरों में ज्यादा असंतुलित हुआ हैं और विशेषज्ञों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं का मानना हैं कि निःसंदेह यह पूरा मामला 'भ्रूण हत्या' का है। पहले तो हमारे समाज में लड़कियों तथा महिलाओं की सुरक्षा का मामला उनके जन्म के बाद या बड़ी होने के बाद का था, लेकिन १९९१ की जनगणना ने इसकी तरफ स्पष्ट इशारा किया कि लड़कियां जन्म से पहले भी सुरक्षित नहीं हैं। यदि हम अपने परिवार, समुदाय एवं समाज के

वर्तमान को देखें तो स्थिति बहुत सकारात्मक भी नहीं प्रतीत होती है और चेता रही है कि एक सुखद भविष्य की कल्पना, बिना संतुलित लिंगानुपात एवं जेण्डर आधारित भेदभाव-रहित समाज के बिना असंभव ही होगी।

बालिका स्नेही पंचायत क्या है?

बालिका स्नेही पंचायत वह पंचायत हैं जो महिलाओं एवं बालिकाओं के मूलभूत अधिकारों यथा उनकी मर्यादा, संरक्षण, सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं शिक्षा को सुनिश्चित करती है। पंचायत महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक उन्नति के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण देती है तथा उनकी राजनीति में सहभागिता के कल्याण को भी सुनिश्चित करती है।

बालिकाओं तथा महिलाओं को उन्नति के अवसर प्रदान करने केलिए समन्वित तथा समेकित प्रयास करती है व करने केलिए प्रत्येक आवश्यक कदम उठाती है।

बालिका स्नेही पंचायत के प्रमुख लक्षण निम्न हैं-

१) पंचायत में प्रत्येक स्तर पर निर्णय की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सक्रिय एवं जेण्डर संवेदनशील व्यवस्था का निर्माण।

२) महिलाओं एवं बालिकाओं के सौहार्दपूर्ण वातावरण निर्माण के लिए पंचायत में समेकित एवं समन्वित प्रयास।

३) घटते लिंगानुपात और जेण्डर आधारित भेदभाव के बारे में पंचायत की समझ में वृद्धि।

४) महिलाओं एवं बालिकाओं से सम्बन्धित या योजनाओं तथा सेवाओं की लाभ ग्राह्यता में वृद्धि।

५) विभिन्न क्षेत्र के कार्यक्रमों तथा योजनाओं में महिलाओं तथा बालिकाओं को प्राथमिकता प्रदान कर योजनाओं तथा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।

६) पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण और दूसरे जेण्डर सम्बन्धित कार्यक्रमों/अधिनियमों/नियमों का पंचायत में प्रभावी क्रियान्वयन।

७) महिलाओं तथा बालिकाओं के लिए सुरक्षित एवं संरक्षित वातावरण का निर्माण।

सरकार द्वारा जिला स्तर पर कलक्टर एवं ब्लॉक स्तर पर उप खण्ड अधिकारी की अध्यक्षता में समितियों/कमेटी का गठन प्रस्तावित किया गया है जो कि इस कार्यक्रम के पर्यवेक्षण केलिए उत्तरदायी तथा अधिकृत हैं।

पंचायत स्तर पर सरपंच, बालिका स्नेही पंचायत निर्माण की प्रक्रिया का नेतृत्व व पर्यवेक्षण करेगा/ करेगी।

चूंकि बालिका स्नेही पंचायत निर्माण, सरकार, पंचायत एवं उरमूल सीमान्त समिति का इन चिह्नित गांवों में एक साझा प्रयास है, इसलिए पंचायत के लोगों तथा पंचायत के चुने हुए प्रतिनिधियों की भूमिका, इन कार्यक्रमों के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। ❑

नवोन्मेष

आत्म कथा

है सखी ! उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊं,
मधुर चांदनी रातों की
खिल-खिला कर हंसते, होने वाली उन बातों की।
मिला नहीं मुझको वह सुख,
उसका स्वप्न देखकर जाग गयी
आलिंगन आते-आते, मुस्का कर भाग गया।
जिसकी उज्ज्वल सी छवि
कर-कमल से
नेत्र नीरज से
हृदय वज्र-सा
जिसकी मतवाली सुन्दर छाया
उसकी स्मृति पाथेय बनी है
थके पथिक की पंथा की सी
छोटे से जीवन की कैसे,
बड़ी कथाएं आज कहूं?
क्या तुम सुनकर उपकार करोगे?
मेरी भोली आत्मकथा
रहने दो थकी सोयी है मेरी मौन व्यथा। ❑

-अलका शर्मा, धावली, तहसील-श्रीमाधोपुर, जिला-सीकर

क्या लिखूं जी ?

आज की प्राणघातक शिक्षा बालक को महज किताबी कीड़ा बनाती है। पाठ्यक्रम की पुस्तकें रटरटाकर बालक किसी न किसी तरह, परीक्षा पास कर लेता है। लेकिन उसकी किसी भी शक्ति का पूर्णतया विकास नहीं होता। पुस्तक के अलावा और कोई बात बालक से पूछी जाती है,तो बेचारा पत्थर की मूर्ति बनकर खड़ा रहता है, उसके होश-हवास उड़ जाते हैं, वह भौंचक्का होकर इधर-उधर देखने लगता है। उसे कुछ सूझता नहीं कि क्या कहे, क्या न कहे। अंत में दबी जबान से डरता हुआ वह यही कहता है कि यह बात तो किसी ने बताई नहीं।

यदि आपको कुछ पूछना है तो किताब में से पूछिए। इसी प्रकार लिखने और बोलने का हाल है। अपनी तरफ से बालक न कोई चीज लिख सकता है और न बोल सकता है। तोते की तरह जो कुछ रट रखा है, उसे ही लिख सकता है और उसे ही बोल सकता है। इसके अलावा वह बिलकुल कोरा है। एक दिन मैंने एक विद्यार्थी से कहा कि यदि आप अपने भाई के नाम पत्र लिखना चाहें तो एक दो दिन में लिख कर मुझे दे दें। यह सुनकर विद्यार्थी खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा, कुछ संकोच करता रहा। आखिरकार उसने यही जवाब दिया-'क्या लिखू जी ?' किसी भी विद्यार्थी से पूछिए, प्राय: यही पेटेंट जवाब मिलेगा। क्या छोटे और क्या बड़े विद्यार्थी सब का यही हाल है। स्वतंत्ररूप से वे न लिख सकते हैं और न बोल सकते हैं। उनका कसूर भी क्या है ? उन्हें न तो स्वंय शिक्षण का मौका दिया जाता है और न स्वयं विचार करने का ही । ग्रामोफोन की चूड़ी की तरह उनके दिमाग में कुछ भर दिया जाता है, उसे ही वे उगल देते हैं। कितनी दु:खद और घातक स्थिति ! ❑

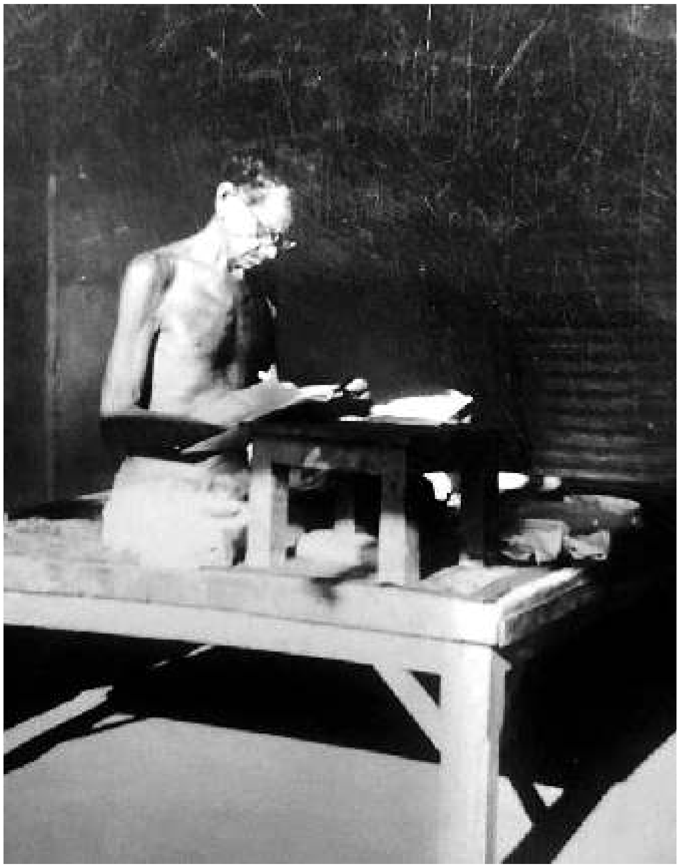

शिक्षाविद् बंशीधर जी का दुर्लभ चित्र

डॉ. आनन्द लक्ष्मी जिन्दगी का जश्न

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में ६ अप्रेल को बुद्धिजीवियों, शिक्षकों, सामाजिक तथा मानव अधिकार कार्यकर्ताओं और अनेक गैर सरकारी संस्थाओं के समर्पित लोगों ने शिक्षाविद् डॉ. आनन्द लक्ष्मी के असाधारण जीवन यात्रा का उत्सव मनाया।

समिति के अध्यक्ष रमेश थानवी के यह कहने की कि 'आनंद लक्ष्मी ने परंपरागत संकीर्णताओं को अस्वीकार करते हुए हम सब के जीवन को हीं गहरे प्रभावित किया' की ताईद उन सभी की बातों में हुई जिन्होंने इस स्मृति सभा में डॉ. लक्ष्मी को याद किया।

उनके मित्रों और सहकर्मियों अरुणा राय तथा डॉ. शारदा जैन के साथ पूर्व प्रशासनिक अधिकारी ललित माथुर व अभिमन्युसिंह, कंचन माथुर, मीना माथुर, नीरजा मिश्रा, निखिल डे, ममता जैतली और कविता श्रीवास्तव ने डॉ. आनन्द लक्ष्मी के साथ बिताए दिनों को साझा किया।

इस अवसर पर शिक्षाविद् डा. आनन्द लक्ष्मी पर एक ऑडियो-विजुअल प्रस्तुति भी की गई।

२३ मार्च १९३२ में जन्मी डॉ. आनन्द लक्ष्मी का पिछले दिनों १३ मार्च को निधन हो गया। ❑

धृतराष्ट्र उवाच

❑

'देवी कुन्ती!' यह दुष्ट धृतराष्ट्र तुम्हें प्रणाम करता है और तुम पर तथा तुम्हारे पुत्रों पर किये गए अत्याचारों के लिए क्षमा मांगता है।'

'देवी कुन्ती, मुझे रोको मत। अब तो मुझे अपने मन का भार पूरी तरह से हल्का कर लेने दो। इसे दूर किए बिना मुझे चैन नहीं पड़ेगा। बाहर से मीठे शब्द बोलकर अच्छा बनने और अन्दर से पूरी तरह से दुष्टता का पोषण करने का काम ही मैंने जीवन-भर किया है।

कुंती! तुम्हारे पुत्रों का नाश करने के प्रयत्नों को मैंने एक ओर से उत्तेजन दिया, तो उसी क्षण दूसरी ओर से ही उनको मधुर शब्दों में, शास्त्र की भाषा में, आशीर्वाद भी दिया। इस प्रकार दुरंगा मेरा जीवन रहा है।' ❑